वार्षिक रु. २००, मूल्य रु. २५

ISSN 2582-0656

विवेक ज्योति

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

वर्ष ६३ अंक ११

नवम्बर २०२५

* आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च *

वर्ष ६३

अंक ११

विवेक-ज्योति

हिन्दी मासिक

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी योगस्थानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी पद्माक्षानन्द

कार्तिक, सम्वत् २०८२

नवम्बर, २०२५

अनुक्रमणिका

* निजस्वरूप स्मरण, सदा उसी अन्तःस्थ ईश्वर का स्मरण : विवेकानन्द ४८६
* सम्बन्धों का सम्पोषण : सहभाजन एवं संरक्षण की कला (स्वामी निखिलेश्वरानन्द) ४८९
* भारतीय ज्ञान-परम्परा (डॉ. सत्येन्दु शर्मा) ४९६
* (बच्चों का आंगन) एवरेस्ट की चढ़ाई में दृष्टि बाधक नहीं (श्रीमती मिताली सिंह) ५००
* पार्श्वनाथ की जन्मभूमि (स्वामी ब्रह्मेशानन्द) ५०१
* सनातन धर्म (प्रव्राजिका बोधस्वरूपप्राणा) ५०३
* (युवा प्रांगण) युवाओं के लिए कठोपनिषद् का दिव्य उपहार (स्वामी गुणदानन्द) ५०७
* संसार की असारता को समझिए (स्वामी सत्यरूपानन्द) ५०९
* वेदान्त क्या है : शंकराचार्य से स्वामी विवेकानन्द तक (स्वामी प्रणवानन्द) ५१४
* सत्संग (चम्पा भट्टाचार्य) ५१७
* बच्चों में पाठशाला के प्रति प्रेम विकसित करें (सुश्री विजयलक्ष्मी) ५१८
* (भजन एवं कविता) अवशेष पूर्ण ही रहता है (श्रीधर द्विवेदी) ५०२
* हे प्रभु! कवन जतन कर पाऊँ (स्वामी मैथिलीशरण) ५०२
* हे शिव सदा सुमति के स्वामी (डॉ. ओमप्रकाश वर्मा) ५१३
* पग-पग पर दे विजय दान (डॉ. अनिल कुमार) ५१३
* प्रभु मुझको इतना बल दे दे (विजय कुमार श्रीवास्तव) ५१३
* श्रीरामकृष्ण-स्तुति-७ (रामकुमार गौड़) ५१६

शृंखलाएँ

मंगलाचरण (स्तोत्र) ४८५
पुरखों की थाती ४८५
सम्पादकीय ४८७
रामगीता ४९३
प्रश्नोपनिषद् ५१०
श्रीरामकृष्ण-गीता ५१२
गीतातत्त्व-चिन्तन ५२०
साधुओं के पावन प्रसंग ५२३
समाचार और सूचनाएँ ५२५

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५ (फोन करने का समय केवल सुबह १० से १२)
ई-मेल : **vivekjyotirkmraipur@gmail.com,** वेबसाइट : ***www.rkmraipur.org***
आश्रम कार्यालय : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९ (समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

ISSN 2582-0656

विवेक-ज्योति के सदस्य कैसे बनें

भारत में	वार्षिक	५ वर्षों के लिए	१० वर्षों के लिए
एक प्रति २५/-	२००/-	१०००/-	२०००/-
विदेशो में (हवाई डाक से)	६० यू.एस. डॉलर	३०० यू.एस. डॉलर	
संस्थाओं के लिए	३००/-	१५००/-	

भारत में रजिस्टर्ड पोस्ट से माँगने का शुल्क प्रति अंक अतिरिक्त ३०/- देय होगा।

* सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक या साधारण मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – **'रामकृष्ण मिशन'** (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाकर रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम रायपुर (छ.ग.) ४९२००१ के नाम स्पीड पोस्ट से भेज दें अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा करायें :

बैंक का नाम : सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया
अकाउण्ट का नाम : रामकृष्ण मिशन, रायपुर
शाखा का नाम : विवेकानन्द आश्रम, रायपुर, छ.ग.
अकाउण्ट नम्बर : 1385116124
IFSC : CBIN0280804

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

आवरण पृष्ठ पर स्वामी विवेकानन्द की मूर्ति को दर्शाया गया है, जो रामकृष्ण मठ, बेलगावी, भाटे हाउस की है। बेलगावी में स्वामी विवेकानन्द १६, अक्तूबर १८९२ से २७ अक्तूबर १८९२ तक कुल १२ दिन रुके थे।

विवेक-ज्योति कोष/स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्री देवीशरण गुप्ता, जोधपुर, राजस्थान	२,०००
श्री ए.डी.अडोनी, पुना, महाराष्ट्र	१०,००१

लेखकों से निवेदन

सम्माननीय लेखको ! गौरवमयी भारतीय संस्कृति के संरक्षण और मानवता के सर्वांगीण विकास में राष्ट्र के सुचिन्तकों, मनीषियों और सुलेखकों का सदा अवर्णनीय योगदान रहा है। विश्वबन्धुत्व की संस्कृति की द्योतक भारतीय सभ्यता ऋषि-मुनियों के जीवन और लेखकों की महान लेखनी से संजीवित रही है। आपसे नम्र निवेदन है कि 'विवेक ज्योति' में अपने अमूल्य लेखों को भेजकर मानव-समाज को सर्वप्रकार से समुन्नत बनाने में सहयोग करें। विवेक ज्योति हेतु रचना भेजते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखें –

१. धर्म, दर्शन, शिक्षा, संस्कृति तथा मानव के नैतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक विकास से सम्बन्धित रचनाओं को 'विवेक-ज्योति' में स्थान दिया जाता है।, **२.** रचना बहुत लम्बी न हो। पत्रिका के दो या अधिकतम चार पृष्ठों में आ जाय। पाण्डुलिपि फूलस्केप रूल्ड कागज पर दोनों ओर यथेष्ट हाशिया छोड़कर स्पष्ट सुन्दर हस्तलेख में लिखी या टाइप की हुयी हो। आप अपनी रचना ई-मेल – vivekjyotirkmraipur@gmail.com से भी भेज सकते हैं।, **३.** लेख में आये उद्धरणों के सन्दर्भ का पूरा विवरण दें।, **४.** आपकी रचना डाक में खो भी सकती है, अत: उसकी एक प्रतिलिपि अपने पास अवश्य रखें। अस्वीकृति की अवस्था में वापसी के लिये अपना पता लिखा हुआ एक लिफाफा भी भेजें।, **५.** पत्रिका हेतु कवितायें छोटी, सारगर्भित और भावपूर्ण लिखें।, **६.** 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचारों का पूरा उत्तरदायित्व लेखक का होगा और स्वीकृत रचना में सम्पादक को यथोचित संशोधन करने का पूरा अधिकार होगा। न्यायालय-क्षेत्र रायपुर (छ.ग.) होगा।, **७.** 'विवेक-ज्योति' में मौलिक और अप्रकाशित रचनाओं को ही प्राथमिकता दी जाती है, इसलिये अनुवाद न भेजें। यदि कोई विशिष्ट रचना इसके पहले किसी दूसरी पत्रिका में प्रकाशित हो चुकी हो, तो उसका उल्लेख अवश्य करें।

नवम्बर माह के जयन्ती और त्योहार

०२	स्वामी सुबोधानन्द
०४	स्वामी विज्ञानानन्द
२९	स्वामी प्रेमानन्द
२,१५	एकादशी

'vivek jyoti hindi monthly magazine' के नाम से अब विवेक-ज्योति पत्रिका यू-ट्यूब चैनल पर सुनें

विवेक-ज्योति के अंक ऑनलाइन नि:शुल्क पढ़ें : www.rkmraipur.org

क्रमांक विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना के सहयोग कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
७३०. गुप्त दानदाता	स्वामी आत्मानन्द उत्कृष्ट विद्यालय, मैनपुर, गरियाबंद, छ.ग.

विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना

मनुष्य का उत्थान केवल सकारात्मक विचारों के प्रसार से करना होगा । – स्वामी विवेकानन्द

❖ क्या आप स्वामी विवेकानन्द के स्वप्नों के भारत के नव-निर्माण में योगदान करना चाहते हैं?

❖ क्या आप अनुभव करते हैं कि भारत की कालजयी आध्यात्मिक विरासत, नैतिक आदर्श और महान संस्कृति की युवकों को आवश्यकता है?

✓ यदि हाँ, तो आइए! हमारे भारत के नवनिहाल, भारत के गौरव छात्र-छात्राओं के चारित्रिक-निर्माण और प्रबुद्ध नागरिक बनने में सहायक 'विवेक-ज्योति' को प्रत्येक पुस्तकालय में पहुँचाने में सहयोग कीजिए। आप प्रत्येक पुस्तकालय में पहुँचाने वाली हमारी इस योजना में सहयोग कर अपने राष्ट्र की सेवा कर सकते हैं। आपका प्रयास हमारे इस महान योजना में सहायक होगा, हम आपके सहयोग की प्रतीक्षा कर रहे हैं –

✍ १. 'विवेक-ज्योति' को विशेषकर भारत के स्कूल, कॉलेज, महाविद्यालय और विश्वविद्यालयों द्वारा युवकों में प्रचारित करने का लक्ष्य है।

✍ २. एक पुस्तकालय हेतु मात्र २१००/- रुपये सहयोग करें, इस योजना में सहयोग-कर्ता के द्वारा सूचित किए गए सामुदायिक ग्रन्थालय, या अन्य पुस्तकालय में १० वर्षों तक 'विवेक-ज्योति' प्रेषित की जायेगी।

✍ ३. यदि सहयोग-कर्ता पुस्तकालय का नाम चयन नहीं कर सकते हैं, तो हम उनकी ओर से पुस्तकालय का चयन कर देंगे। दाता का नाम पुस्तकालय के साथ 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित किया जाएगा। यह योजना केवल भारतीय पुस्तकालयों के लिये है।

❖ आप अपनी सहयोग-राशि इलेक्ट्रॉनिक मनीआर्डर या एट पार चेक 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम से बनवाकर पत्र के साथ निम्नलिखित पते पर भेज दें, जिसमें 'विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना' हेतु लिखा हो। आप अपनी सहयोग-राशि निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कर सकते हैं। आप इसकी सूचना ई-मेल, फोन और एस. एम.एस. द्वारा अपना नाम, पूरा पता, पिन कोड एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।

सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, अकाउन्ट नम्बर : 1385116124, **IFSC CODE :** CBIN0280804

पता – **व्यवस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,**

रायपुर - 492001 (छत्तीसगढ़), दूरभाष – 09827197535, 0771-2225269, 4036959

ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com, वेबसाइट : www.rkmraipur.org

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

'विवेक-ज्योति' पत्रिका स्वामी विवेकानन्द जी की जन्म-शताब्दी वर्ष के शुभ अवसर पर १९६३ ई. में आरम्भ की गई थी। तबसे यह पत्रिका निरन्तर आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और नैतिक विचारों के प्रचार-प्रसार द्वारा समाज को सदाचार, नैतिक और आध्यात्मिक जीवन यापन में सहायता करती चली आ रही है। यह पत्रिका सदा नियमित और सस्ती प्रकाशित होती रहे, इसके लिये विवेक-ज्योति के स्थायी कोष में उदारतापूर्वक दान देकर सहयोग करें। आप अपनी दान-राशि इलेक्ट्रॉनिक मनीआर्डर, ऐट पार चेक या सीधे बैंक के खाते में उपरोक्त निर्देशानुसार भेज सकते हैं। प्राप्त दान-राशि (न्यूनतम रु. २०००/-) सधन्यवाद सूचित की जाएगी और दानदाता का नाम भी पत्रिका में प्रकाशित होगा। रामकृष्ण मिशन को प्रदत्त सभी दान आयकर अधिनियम-१९६१, धारा-८०जी के अन्तर्गत आयकर मुक्त है।

सुदर्शन सोलार...
ऊर्जा अपरंपार !
आधुनिक भारत की बिजली की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हमारे पास पर्याप्त मात्रा में सौर ऊर्जा उपलब्ध है। प्राकृतिक रुप से उपलब्ध इस स्त्रोत का प्रतिदिन की अपनी आवश्यकताओं के लिये उपयोग करके, अपने बिजली के बिल में भारी पैमाने पर कटौती कर, हम अपने देश को बिजली के निर्माण में आत्मनिर्भर बनाने में सहायता कर सकते हैं।
इस सुन्दर भूमि को सदा हरी-भरी रखने के लिये अपना साथी
भारत का विश्वसनीय सौर ऊर्जा ब्रांड - 'सुदर्शन सौर'!
Sudarshan Saur
सोलर वॉटर हीटर
24 घंटे गरम पानी के लिए
सोलर लाइटिंग्स
ग्रामीण क्षेत्र में घरेलू उपयोग के लिए
सोलार इलेक्ट्रिसिटी सिस्टम
रुफटॉप सोलार
बिजली उत्पन्न करने के लिए
घर, बंगलोज, हॉस्पिटल्स, हॉटेल्स, इंडस्ट्रीज, कमर्शिअल कॉम्प्लेक्स, इन्स्टिट्यूट्स के लिए उपयुक्त
समझदारी की सोच!
३० साल का प्रदीर्घ अनुभव!
आजीवन सेवा
लाखां संतुष्ट ग्राहक
विस्तृत डीलर नेटवर्क
Sudarshan Saur®
www.sudarshansaur.com
Toll Free
1800 233 4545
E-mail: office@sudarshansaur.com

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ६३ नवम्बर २०२५ अंक ११

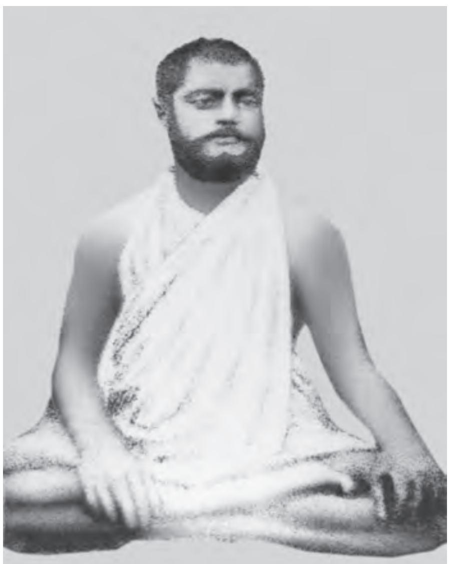

विवेकानन्द-वन्दना

आनन्दं च विवेकमण्डितमहो नामाक्षरं धारयन्
यः पाश्चात्यविपश्चितां मनसि चिद्रूपां द्युतिं दीपयन् ।
सप्तद्वीपा वसुन्धरातलमधि श्रीभारतस्याद्‌भुतं
गौरं गौरवसंगतं शुभयशः प्रकाशयत् सन्ततम् ।।

– अहो ! विवेक युक्त आनन्द 'विवेकानन्द' नाम धारण कर जिन्होंने पाश्चात्य विद्वानों के चित्त में ज्ञानमयी द्युति उत्पन्न कर इस सप्तद्वीपा वसुन्धरा पर श्रीभारत के अद्भुत गौरवमय निर्मल यश को सतत प्रकाशित किया, उन्हीं यतिवर स्वामी विवेकानन्द जी के चरणों में हम प्रणाम करते हैं।

पुरखों की थाती

गतेऽपि वयसि ग्राह्या विद्या सर्वात्मना बुधैः।
यद्यपि स्यान्न फलदा सुलभा सान्यजन्मनि।।८८४।।

– विवेकवान् मनुष्य को चाहिये कि आयु बीत जाने पर भी वह पूरा मन लगाकर विद्या का अभ्यास करता रहे, भले ही वह विद्या इस जन्म में काम न आ सके, परन्तु वह अगले जन्म में सहज ही प्राप्त होगी।

खादन्न गच्छामि हसन्न भाषे,
गतं न शोचामि कृतं न मन्ये।
द्वाभ्यां तृतीयो न भवामि राजन् !
किं कारणं भोज! भवामि मूर्खः।।८८५।।

– हे राजा भोज, न तो मैं खाता हुआ चलता हूँ, न हँसते हुए बोलता हूँ, न बीती हुई बातों का शोक करता हूँ, न अपने कर्तृत्व का अभिमान करता हूँ और न ही जहाँ दो लोग बातें कर रहे हों उनके बीच जाकर तीसरा बनता हूँ, तो मैं भला मूर्ख कैसे हो सकता हूँ!

कैवर्ती-गर्भ-सम्भूतो व्यासो नाम महामुनिः।
तपसा ब्राह्मणो जातस्तस्माज्जातिर्न कारणम् ।।८८६।।

– महामुनि व्यासदेव, एक केवट नारी के घर जन्म लेकर भी ब्राह्मण कहलाए, अतः ब्राह्मणत्व जन्म से नहीं अपितु तपस्या के फल से प्राप्त होता है।

निजस्वरूप स्मरण, सदा उसी अन्तःस्थ ईश्वर का स्मरण : विवेकानन्द

अतएव यदि मैं तुम्हें यह उपदेश दूँ कि तुम्हारी प्रकृति असत् है और यह कहूँ कि तुमने कुछ भूलें की हैं, इसलिए अब तुम अपना जीवन केवल पश्चात्ताप करने तथा रोने-धोने में ही बिताओ, तो इससे तुम्हारा कुछ भी उपकार न होगा, वरन् उससे और भी दुर्बल हो जाओगे। ऐसा करना तुम्हें सत्पथ के बजाय असत्पथ दिखाना होगा। यदि हजारों साल इस कमरे में अँधेरा रहे और तुम कमरे में आकर 'हाय! बड़ा अँधेरा है! बड़ा अँधेरा है!' कह कहकर रोते रहो, तो क्या अँधेरा चला जायगा? कभी नहीं। एक दियासलाई जलाते ही कमरा प्रकाशित हो उठेगा। अतएव जीवन भर 'मैंने बहुत दोष किये हैं, मैंने बहुत अन्याय किया है', यह सोचने से क्या तुम्हारा कुछ भी उपकार हो सकेगा? हममें बहुत से दोष हैं, यह किसी को बतलाना नहीं पड़ता। ज्ञानाग्नि प्रज्वलित करो, एक क्षण में सब अशुभ चला जायेगा।

अपने प्रकृतस्वरूप को पहचानो, प्रकृत 'मैं' को, उसी ज्योतिर्मय उज्ज्वल, नित्यशुद्ध 'मैं' को प्रकाशित करो, प्रत्येक व्यक्ति में उसी आत्मा को जगाओ। मैं चाहता हूँ कि सभी व्यक्ति ऐसी दशा में आ जायें कि अति जघन्य पुरुष को भी देखकर उसकी बाह्य दुर्बलताओं की ओर वे दृष्टिपात न करें, बल्कि उसके हृदय में रहने वाले भगवान् को देख सकें और उसकी निन्दा न कर, यह कह सकें, 'हे स्वप्रकाशक, ज्योतिर्मय, उठो! हे सदाशुद्धस्वरूप उठो! हे अज, अविनाशी, सर्वशक्तिमान, उठो! आत्मस्वरूप प्रकाशित करो। तुम जिन क्षुद्र भावों में आबद्ध पड़े हो, वे तुम्हें सोहते नहीं।'' अद्वैतवाद इसी श्रेष्ठतम प्रार्थना का उपदेश देता है। निजस्वरूप स्मरण, सदा उसी अन्तःस्थ ईश्वर का स्मरण, उसी को सदा अनन्त, सदाशिव, निष्काम कहकर उसका स्मरण यही एकमात्र प्रार्थना है। यह क्षुद्र 'मैं' उसमें नहीं रहता, क्षुद्र बन्धन उसे नहीं बाँध सकते। और वह अकाम है, इसीलिए अभय और ओजस्वरूप है, क्योंकि कामना तथा स्वार्थ से ही भय की उत्पत्ति होती है। जिसे अपने लिए कोई कामना नहीं, वह किससे डरेगा? कौन-सी वस्तु उसे डरा सकती है? क्या उसे मृत्यु डरा सकती है? अशुभ, विपत्ति डरा सकती है? कभी नहीं। अतएव यदि हम अद्वैतवादी हैं, तो हमें यह मानना होगा कि हमारा 'मैं-पन' इसी क्षण से मृत है। फिर मैं स्त्री हूँ या पुरुष हूँ, अमुक अमुक हूँ, यह सब भाव नहीं रह जाता, ये अन्धविश्वास मात्र थे और शेष रहता है वही नित्य शुद्ध, नित्य ओजस्वरूप, सर्वशक्तिमान सर्वज्ञस्वरूप और तब हमारा सारा भय चला जाता है। कौन इस सर्वव्यापी 'मैं' का अनिष्ट कर सकता है? इस प्रकार हमारी सम्पूर्ण दुर्बलता चली जाती है। तब दूसरों में भी उसी शक्ति को उद्दीप्त करना हमारा एकमात्र कार्य हो जाता है। हम देखते हैं, वे भी यही आत्मास्वरूप हैं, किन्तु वे यह जानते नहीं। अतएव हमें उन्हें दर्शाना होगा, इस अनन्तस्वरूप के प्रकाशनार्थ हमें उनकी सहायता करनी पड़ेगी। मैं देखता हूँ कि जगत् में इसी के प्रचार की सबसे अधिक आवश्यकता है। वे सब मत अत्यन्त पुराने हैं, बहुतेरे पर्वतों से भी पुराने। सभी सत्य सनातन हैं। सत्य व्यक्तिविशेष की सम्पत्ति नहीं है। कोई भी जाति, कोई भी व्यक्ति उसे अपनी सम्पत्ति कहने का दावा नहीं कर सकता। सत्य ही सब आत्माओं का यथार्थ स्वरूप है। किसी भी व्यक्तिविशेष का उस पर विशेष अधिकार नहीं है। किन्तु हमें उसे व्यावहारिक और सरल बनाना होगा, (क्योंकि उच्चतम सत्य अत्यन्त सहज और सरल होते हैं) जिससे वह समाज के हर रंध्र में व्याप्त हो जाये, उच्चतम मस्तिष्क से लेकर अत्यन्त साधारण मन द्वारा भी समझा जा सके तथा आबाल-वृद्ध-वनिता सभी उसे जान सकें। ये न्याय के कूट विचार, दार्शनिक मीमांसाएँ, ये सब मतवाद और क्रिया-काण्ड, इन सबने किसी समय भले ही उपकार किया हो, किन्तु आओ, हम सब आज से इसी क्षण से धर्म को सहज बनाने की चेष्टा करें और उस सत्ययुग के पुनरागमन में सहायता करें, जब प्रत्येक व्यक्ति उपासक होगा और उसका अन्तःस्थ सत्य ही उसकी उपासना का विषय होगा। (८/६२-६३)

सम्पादकीय

शिक्षार्जन हेतु आवश्यक सद्‌गुण : विनम्रता

शिक्षा के प्रमुख घटक होते हैं – शिक्षालय, शिक्षक, शिक्षार्थी छात्र और शैक्षिक परिवेश। इन सबकी गुणवत्ता पर विशेष रूप से आधिकारिक स्तर पर प्रयास किया जाता है। लेकिन शिक्षार्जन करने के लिये जिन महत्त्वपूर्ण और आवश्यक गुणों की आवश्यकता है, उन पर विशेष जोर नहीं दिया जाता, न ही इसके लिये कोई सेमीनार आयोजित कर छात्रों में उन सद्‌गुणों के विकास हेतु प्रेरित किया जाता है। इसके विपरीत आज कर्तव्य से अधिक अधिकार की बात की जाती है। प्राय: अखबारों और सोशल मिडिया में छात्रों द्वारा शिक्षकों के अपमान और आन्दोलन की सूचनायें आती रहती हैं और अभद्र, कटु वचन के कारण शिक्षक और शिक्षार्थी में परस्पर कटुता हो जाती है। इस परिस्थिति में शिक्षार्जन का परिवेश, शिक्षा-ग्रहण की मनोवृत्ति दूषित हो जाती है। ऐसे वातावरण, ऐसी मनोवृत्ति और मनोभूमि में विशेष शिक्षा की आशा नहीं की जा सकती। ऐसी मनोभूमि के छात्र पाठ्यक्रम की शिक्षा कोचिंग, यूट्यूब से प्राप्त कर अच्छी नौकरी पाकर भी थोड़ी सी समस्या आने पर मानसिक सन्तुलन खो बैठते हैं और अनर्थ कर अपनी जीविका खो देते हैं। वे घर में उपेक्षा के पात्र, साथियों में अपमानित और समाज के बोझ जैसे हो जाते हैं। अत: विभिन्न परिस्थितियों में कैसे मानसिक सन्तुलन बनाये रखा जाये, कैसे अपने से बड़े और छोटे लोगों से बात की जाये, इसका व्यावहारिक ज्ञान भी आवश्यक है, जो हमें परिवार और समाज से मिलता है, किन्तु वह विकसित और परिपक्व शिक्षालय में होता है। वह सद्‌गुण क्या है, जो छात्र को भौतिक क्षेत्रों में विकास के साथ-साथ उसके मन में सद्‌गुणों का विकास कर एक सन्तुलित और सुखी जीवन जीने में सहायक हो? आइये इस लघु आलेख में उस सद्‌गुण पर चर्चा करते हैं।

शिक्षार्जन हेतु विनम्रता प्रथम और आवश्यक गुण है। इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा और प्रयोजनीयता पर शास्त्रों और महान पुरुषों ने बल दिया है। शिक्षार्जन का एक उद्देश्य जीवन-यापन हेतु धनोपार्जन करना भी है। धन, सम्पदा के लिये भी विनम्रता की महती आवश्यकता है। कहा गया है –

विनयाद् गुणा आगच्छन्ति विनयादैश्वर्यमेव च।
विनयाद् धनमक्षय्यं विनयाद् सर्वसम्पदः।।

– विनम्रता से गुण आते हैं। विनम्रता से ऐश्वर्य मिलता है। विनम्रता से अक्षय धन मिलता है। विनम्रता से सभी सम्पदायें मिलती हैं।

भगवान श्रीरामकृष्ण देव कहते हैं – " महान बनना हो, तो पहले विनम्र बनना चाहिये। चातक पक्षी का घोंसला नीचे होता है, पर वह आसमान में बहुत ऊँचा उड़ता है। ऊँची जमीन में खेती नहीं होती। उसके लिये नीची जमीन चाहिये, जहाँ पानी जम सके। तभी खेती हो सकती है।" "फलवान वृक्ष की डालियाँ सदा नीचे की ओर झुकी रहती हैं। अगर तुम बड़ा बनना चाहते हो, तो छोटा (विनम्र) बनो।"[१]

जीवन में प्रभावी शक्ति और सम्मान के इच्छुक व्यक्तियों को विनयी होने का परामर्श नीतिकारों ने दिया है – **विनयः प्रभावः श्रियः पतिः सतां नित्यमाद्रियते।** – विनम्रता प्रभाव और लक्ष्मी का स्वामी है। सज्जन लोग हमेशा विनम्रता का आदर करते हैं।

किसी से कुछ प्राप्त करने के लिये सर्वप्रथम व्यक्ति के चाल-चलन और वाणी का प्रभाव पड़ता है। एक शिक्षार्थी का कक्षा में बैठना-उठना, खड़ा होना, बात करना – इन सबमें उसकी विनम्रता, शिष्टता और शालीनता दृष्टिगोचर होनी चाहिये। तब सम्मुख उपस्थित शिक्षक या वरिष्ठ जन उसके व्यवहार से प्रभावित होकर उसकी जिज्ञासा का समाधान करते हैं। इस सम्बन्ध में महाभारत का प्रसंग स्मरणीय है। अर्जुन और दुर्योधन दोनों श्रीकृष्ण के पास सहायता हेतु

गये थे। किन्तु दुर्योधन के खड़े होने का स्थान शिष्टाचार के अनुकूल नहीं था। दुर्योधन के प्रत्येक चाल-चलन और वाणी में उसकी उद्धतता, उदण्डता दिखायी देती है, जबकि पाण्डवों में सर्वत्र अपने बड़ों के प्रति विनम्रता, श्रद्धा और छोटे भाइयों के प्रति स्नेह दृष्टिगोचर होता है। इसका परिणाम हुआ कि राज्य और सिद्धान्त की विवशता में हस्तिनापुर की ओर से युद्ध कर रहे भीष्म और द्रोण भी अपने प्रतिद्वन्द्वी पाण्डवों के लिये विजय का आशीर्वाद देते हैं और उनकी मंगल कामना करते हैं।

इस प्रसंग में श्रीरामचरितमानस का भी एक प्रसंग स्मरणीय है। श्रीपरशुराम जी बड़े ही क्रोध एवं कर्कशता और उद्धतता से राजा जनक और भगवान श्रीराम से प्रश्न पूछ रहे हैं, लेकिन मर्यादापुरुषोत्तम भगवान श्रीराम बड़ी ही शालीनता से उनका उत्तर दिये जा रहे हैं। अन्त में परशुरामजी भगवान के सामने नतमस्तक हो जाते हैं। इसलिये सम्यक् जीवन-निर्माण हेतु छात्र में विनयशीलता का होना आवश्यक है।

मुझे एक साक्षात्कार की याद आ रही है। एक बार एक विश्वविद्यालय में कुछ लोगों ने एक पद हेतु आवेदन किया। साक्षात्कार के एक दिन पहले वे छात्र लोग कुलपति के पास आन्दोलन करते हुये गये। वे लोग अधिकारों की आड़ में अभद्रतापूर्वक आचरण कर रहे थे। उस समय उन्हें नियमानुसार समझाकर वापस भेज दिया गया। किन्तु जब वे लोग दूसरे दिन के साक्षात्कार में पहुँचे, तो उसमें से वे सभी अभद्र प्रतिनिधि अनुत्तीर्ण हो गये। अत: अधिकारों की आड़ में कर्तव्य की अवहेलना व्यक्ति को जीवन के अमूल्य अवसरों से वंचित कर देती है। इसका ध्यान एक शिक्षार्थी को रखना चाहिये।

नीतशास्त्र बार-बार हमें परामर्श देते हैं कि अहंकारी न बनो, विनयी बनो। प्रसिद्ध नीतिश्लोक है –

नमन्ति फलिनो वृक्षाः नमन्ति गुणिनो जनाः।
शुष्ककाष्ठा न नमन्ति दुर्जना न नमन्ति च।।

– फलवाले वृक्ष झुक जाते हैं। गुणी लोग विनम्र होते हैं। किन्तु सूखे काठ और दुर्जन लोग नहीं झुकते हैं।

श्रीरामकृष्ण देव कहते थे – ''जहाँ लोग सिर झुकाते हैं, वहाँ तुम्हें दण्डवत करना चाहिये।'' ''जो व्यक्ति गुणी और सामर्थ्यवान होता है, वह सदा नम्र और विनयशील होता है। मूर्ख ही झूठे अहंकार और अभिमान से फूला रहता है।''[२]

विनम्रता का भ्रम और दुरुपयोग

लेकिन छात्र को सदा यह ध्यान रखना चाहिये कि उसकी विनम्रता कहीं उसकी दुर्बलता न बन जाये। पाण्डव विनम्र थे, किन्तु कायर और अविवेकी नहीं थे। श्रीराम विनयी थे, लेकिन परम शक्तिशाली रघुवंश-भूषण की मर्यादा के वाहक थे। एक योद्धा विनम्र होता है, लेकिन शूर-वीरता उसका आभूषण है। एक छात्र में स्वाभिमान पूरा हो, लेकिन अभिमान न हो। विनय व्यक्ति को शक्तिशाली और सन्तुलित बनाता है। वह किसी भी मूल्य पर आत्मसम्मान और आत्मगौरव को म्लान नहीं करता है। इसलिये श्रीरामकृष्ण देव का यह उपदेश भी स्मरणीय है – ''जो अहंकार आत्मा की महिमा को प्रकट करता है, वह अहंकार नहीं। जो विनय आत्मा के गौरव को नीचे लाती है, वह विनय नहीं।''[३]

अत: विनम्र बनें, किन्तु कायर न बनें। स्वाभिमानी बनें, किन्तु अहंकारी न बनें। शिक्षार्जन हेतु विनयी बनें और शिक्षा अर्जित करने के बाद भी विनयपूर्वक उसे दूसरों को वितरित करें। सच्ची विद्या विनयी बनाती है। धन, धर्म और सुख का स्रोत विनय है, जो विद्या से प्राप्य है। अत: विनय सर्वप्रकारेण उन्नति हेतु ग्राह्य है। नीतिश्लोककार कहते हैं –

विद्या ददाति विनयं विनयाद् याति पात्रताम्।
पात्रत्वाद् धनमाप्नोति धनाद्धर्मं ततः सुखम्।।

– विद्या विनम्रता देती है, विनम्रता से योग्यता आती है। योग्यता से धन मिलता है। धन से धर्म और उससे सुख मिलता है।

अत: जीवन में विनम्रता को स्थान दें। विनम्र बनें और सर्वसुख, सर्वसम्पदा और सम्मान के अधिकारी बनें।

OOO

सन्दर्भ ग्रन्थ – १. अमृतवाणी, पृ.१०२ **२.** वही, **३.** वही

सम्बन्धों का सम्पोषण : सहभाजन एवं संरक्षण की कला

स्वामी निखिलेश्वरानन्द, सचिव, रामकृष्ण मठ, राजकोट

अनुवादिका – नम्रता वर्मा, पी.आई.वी. विभाग, दिल्ली

हमें संन्यासी के रूप में समस्त सम्बन्धों से परे रहना चाहिए। इसके बाद भी मुझे इस सुन्दर विषय पर व्याख्यान देने के लिए चुना गया है। सम्भवत: इसलिए क्योंकि श्रीरामकृष्ण ने कहा था, ''दोनों पक्षों का वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण होने के कारण दर्शक, दो शतरंज खिलाड़ियों के खेल को अच्छी तरह से समझ पाता है।'' एक संन्यासी के रूप में हमारे पास वस्तुपरक दृष्टि होती है, क्योंकि सम्बन्धों पर विभिन्न दृष्टिकोणों से पति-पत्नी, सन्तान-अभिभावक, सास-बहू, जैसे दोनों ही ओर से सुझाव हेतु लोग हमारे पास आते हैं। अत: संन्यासियों को विविध सम्बन्धों का आन्तरिक विषयनिष्ठ आलोक प्राप्त होता है। सम्भवत: यही कारण है कि सम्बन्धों का सम्पोषण जैसे विशद विषय पर वक्ता के रूप में मुझे चुना गया है। यह अवसर प्रदान करने के लिए मैं AMA का आभार व्यक्त करता हूँ। AMA के प्रबुद्ध श्रोताओं से संवाद करना सदैव आह्लादित करता है।

सम्बन्धों के अनेक प्रकार होते हैं, जैसे – पति एवं पत्नी, अभिभावक एवं सन्तान, शिक्षक एवं छात्र, नियोक्ता एवं कामगार, प्रबन्धन एवं श्रमिक संघ इत्यादि। इनमें से प्रत्येक सम्बन्ध में विस्तृत एवं पृथक् व्यवहार अपेक्षित है। इस विषय पर एक ही व्याख्यान में चर्चा करना सम्भव नहीं है। अत: परामर्श के वर्षों के अनुभव के आधार पर मैं कुछ ऐसे सूत्र देने का प्रयास करूँगा, जो सभी सम्बन्धों के लिए समानोपयोगी होंगे। किसी भी समाज अथवा समुदाय को तीन समूहों में विभाजित किया जा सकता है – प्रथम समूह अपने जीवन में तीन 'P' यानि Profit, Pursuit एवं Popularity चाहते हैं। वे व्यापारिक लाभ, आनन्द एवं लोकप्रियता के आकांक्षी होते हैं। इस समूह के लिये केवल Q या बुद्धि-प्राप्ति ही पर्याप्त होता है। दूसरा समूह वास्तविक और दीर्घकालिक सम्बन्ध एवं मन की शान्ति की आकांक्षा करते हैं। वे जीवन में तीन H यानि Happiness, Harmony एवं Health चाहते हैं। वे परिवार, व्यापार और सामाजिक जीवन में प्रसन्नता, सद्भाव और शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य एवं आनन्द की प्राप्ति करना चाहते हैं। इस समूह को Q के अलावा EQ या भावनात्मक घटक की आवश्यकता होती है। तीसरा समूह न केवल सुख, सद्‌भाव और स्वास्थ्य चाहता है, बल्कि अनन्त सुख, आनन्द और शान्ति के साथ चिरस्थायी सम्बन्ध भी चाहता है, क्योंकि मनुष्य सीमित सुख, आनन्द और शान्ति से सन्तुष्ट नहीं रह सकता है। इस समूह को न केवल Q और EQ की आवश्कता होती है, बल्कि SQ या आध्यात्मिक भागफल (स्प्रिचुअल कोशेंट) की भी आवश्यकता होती है। मैं तीनों समूहों को सम्बोधित करूँगा और तीनों समूहों के लिए लागू होने वाला सूत्र प्रदान करूँगा।

इनमें से प्रथम समूह पर अधिक बातचीत करने की आवश्यकता नहीं है। डेल कार्नेगी द्वारा लिखित 'हाऊ टू विन फ्रेंड्स एंड इंफुलेएन्स पीपुल' एवं 'हॉउ टू मैनेज बॉस' जैसी पुस्तकें इस विषय पर उपलब्ध हैं, जिन्हें आपने पढ़ा भी होगा। औद्योगिक प्रतिष्ठान में आयोजित प्रशिक्षण कार्यक्रम के समय एक बार मुझसे पूछा गया कि उच्च अधिकारियों के साथ सम्बन्धों का किस प्रकार प्रबन्धन करें?' प्रत्युत्तर में हास-परिहास करते हुए हमने कहा, 'कृपया थोड़ा सा मक्खन अपने पास रखें और इसे कभी-कभी बॉस को परोसें।' आप जानते हैं कि मक्खन लगवाना और अपनी प्रशंसा सुनना प्रत्येक व्यक्ति को पसन्द होता है। पति-पत्नी अथवा अधिकारियों का स्नेहभाजन होने के लिए ऐसे कई तरीके हैं, जिनका वर्णन इन पुस्तकों में किया गया है। परन्तु अगर हम सच्चे सम्बन्ध निर्मित करना चाहते हैं, तो हमें परिश्रम का आश्रय लेना होगा। त्याग और नि:स्वार्थ सेवा-भाव की आवश्यकता होगी। सम्बन्धों का पालन-पोषण एक पौधे के पालन-पोषण के समान है, जिसकी निम्न आवश्यकताएँ हैं –

१. मिट्टी – पौधे के दृढ़ मूल एवं विस्तार के लिए मिट्टी की स्थिति अच्छी होनी चाहिए। उसी प्रकार किसी भी

सम्बन्ध को विकसित एवं पोषित करने के लिए व्यक्ति के भीतर कुछ आधारभूत अच्छाई होनी चाहिए।

२. सम्बन्धों के लिए सुरक्षावरण – पौधे के विकास एवं सुरक्षा हेतु बाड़ की आवश्यकता होती है। इसके अभाव में गाय अथवा बकरियाँ आकर पौधे को नष्ट कर देंगी। लेकिन यह घेराबन्दी पौधे की एक निश्चित ऊँचाई तक बढ़ने, विकसित होने एवं गायों और बकरियों से सुरक्षित होने तक ही आवश्यक है। इसी प्रकार सम्बन्धों में भी प्रारम्भिक अवस्था में ही अनुशासन, शिष्टाचार एवं संरक्षण की आवश्यकता होती है। माता-पिता अपने बच्चों के संरक्षक कहलाते हैं। पौधे के प्राथमिक विकास के बाद सुरक्षावरण को हटाने की आवश्यकता होती है। अन्यथा पौधा स्वयं ही घेराबन्दी तोड़कर मुक्त हो जाएगा। इसी प्रकार जब बालक किशोरावस्था में प्रवेश कर जाए, तो माता-पिता को, बच्चों को कुछ ढील देनी चाहिए। जब अभिभावक अपने किशोरवय संतान के प्रति भी संरक्षणात्मक भाव रखते हैं, तब समस्या होती है।

खलील जिब्रान ने कहा था – बच्चे ईश्वर का उपहार हैं। जब तक बच्चे स्वयं अपना ध्यान नहीं रखते, तब तक के लिये माता-पिता उनके संरक्षक हैं। एक निश्चित अवधि के उपरान्त माता-पिता की यह संरक्षणात्मक भूमिका बच्चे के विकास को अवरूद्ध करती है। माता-पिता एवं संतान के सम्बन्धों पर भी इसका नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। एक बालिका ने मुझे बताया कि उसे उच्च शिक्षा के लिए बाहर जाने की अनुमति नहीं मिली। माता के अत्यधिक लगाव से बालिका को घुटन की अनुभूति हो रही थी।

३. प्रकाश एवं स्वच्छ वायु – पौधे के विकास की तरह संतान के स्वास्थ्य एवं सर्वांगीण विकास के लिये भी ये दोनों तत्त्व अपरिहार्य हैं। इस पड़ाव पर, संतान के कल्याण हेतु अभिभावकों को विशेष ध्यान देना चाहिए। अनुशासन सुनिश्चित करने हेतु कुछ नियम बनाने चाहिए। इन नियमों का पालन तब तक हो, जब तक संतान में स्वयं अच्छे-बुरे का निर्णय करने की क्षमता उत्पन्न नहीं हो जाती। इसके बाद माता-पिता एवं संतान के मध्य अनौपचारिक सम्बन्ध होना चाहिए। अन्य प्रकार के सम्बन्धों में भी दोनों पक्षों को स्वतन्त्रता के प्राणवायु की आवश्यकता होती है। सम्बन्धों के विकसित होने के साथ-साथ औपचारिकताएँ कम होती जाती हैं।

४. उर्वरक : किसी पौधे के स्वस्थ विकास के लिए उर्वरक की आवश्यकता होती है। सम्बन्धों में भी यह आवश्यक है। विनम्रता, सेवा एवं देखभालपूर्ण व्यवहार, सम्बन्धों के उर्वरक कहे जा सकते हैं। यहाँ तक कि कर्मचारियों के साथ सहायिका या चालक जैसे सम्बन्धों में भी यह महत्त्व रखता है। विगत पाँच हजार वर्षों से हमारे देश के महान नायकों द्वारा रॉबर्ट ग्रीनलीफ द्वारा प्रचलित Servant Leadership का पालन किया जा रहा है। इसका नवीनतम उदाहरण डॉ. एपीजे अब्दुल कलाम हैं। डॉ. कलाम को महात्मा गाँधी से प्रेरणा मिली।

हमने वर्ष २००२ में पोरबंदर में एक विद्यालय-भवन के उद्घाटन हेतु डॉ. कलाम को आमंत्रित किया था। वे तब राष्ट्रपति नहीं बने थे। वे अत्यन्त विनम्र लगे। जिन सेवकों ने उन्हें भोजन परोसा, उनके साथ भी उनका व्यवहार अत्यन्त मधुर था। पोरबंदर में जिस कक्ष में स्वामी विवेकानन्द जी ठहरे थे, डॉ. कलाम ने वहाँ बैठकर गहन ध्यान किया। छात्रों को प्रेरक उद्बोधन देते हुए डॉ. कलाम ने बताया कि वर्ष १९४७ में वे आठवीं कक्षा में थे। वे अपनी कक्षा के मानीटर भी थे। १५ अगस्त की मध्यरात्रि को सभी छात्रों को रात में जगकर मध्य रात्रि का भाषण सुनने को कहा गया था। डॉ. कलाम ने यह किया। दूसरे दिन समाचार पत्रों में उन्होंने दो चित्र देखे। पहला चित्र लाल किले में ध्वजारोहण करते पंडित जवाहरलाल नेहरू का था। दूसरा चित्र कलकत्ता के दंगाग्रस्त क्षेत्रों में पीड़ितों के आँसू पोंछते महात्मा गाँधी का था। डॉ. कलाम ने बताया कि दूसरा चित्र ही उनकी समूची विद्यालयीन, महाविद्यालयीन एवं जीवन की शिक्षा थी। स्वतन्त्रता आन्दोलन के मुख्य नायक गाँधीजी ने स्वतन्त्रता के पश्चात् किसी भी पद की आकांक्षा नहीं रखी। इसके स्थान पर वे पीड़ितों के साथ खड़े थे। गाँधीजी का यह त्याग-भाव डॉ. कलाम के लिए प्रेरणा बना। पोरबंदर यात्रा के तीन महीने बाद ही डॉ. कलाम भारत के राष्ट्रपति नामित हुए। 'व्यक्ति से बड़ा देश होता है', उनका यही संदेश था। राष्ट्रपति बनने के बाद हुई उनसे भेंट में भी वे अतिशय विनम्र लगे। जब मैंने उन्हें स्वामीजी की पुस्तकें, उनके विचारों पर आधारित वीसीडी एवं काजू से भरा पैकेट भेंट किया, तो उन्होंने कहा – "स्वामीजी! आप बहुत कुछ ले आये।" मैंने कहा, 'मैं क्या दे सकता हूँ, मैं तो सुदामापुरी का फकीर हूँ। मैं भला सम्राट को क्या दे सकता हूँ?' डॉ.

कलाम ने मुस्कुराते हुए कहा, ''स्वामीजी, मैं और आप एक ही सम्राट के सेवक हैं।'' यह विशुद्ध विनम्रता थी। यही कारण है कि वे बच्चों से लेकर बड़ों तक सबमें समान रूप से लोकप्रिय थे।

५. खर-पतवारों पर नियन्त्रण – जिस प्रकार खर-पतवार पौधे की वृद्धि को प्रभावित करते हैं, उसी प्रकार धन, सत्ता और पद के लोभ से सम्बन्ध प्रभावित होते हैं। हमारा समाज अत्यधिक उपभोक्तावादी हो गया है। हाल ही में भारत में भी आत्महत्याएँ बढ़ी हैं। भारत में भी मानसिक रोग और तलाक बढ़ रहे हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में सम्पन्नता के परिणामस्वरूप सम्बन्ध टूट गए हैं। इसके कारण कई बच्चे एकल माता-पिता के साथ बड़े हुए और वे प्रेम के लिये तरसते हैं। भारत में भी औपचारिक तलाक के बिना, कई दम्पत्ती तनावपूर्ण स्थिति में एक साथ रह रहे हैं, लेकिन उनके मध्य शायद ही कोई सम्बन्ध हो। लोभ रूपी खर-पतवार को हटाने के लिए दोनों ही पक्षों को त्याग का अवलम्बन लेना होगा। इसके साथ ही धन एवं सम्पदा का न्यायपूर्ण वितरण आवश्यक है।

६. कीट नियन्त्रण – जैसे कीट पौधों को खा जाते हैं, वैसे ही ईर्ष्या, क्रोध आदि सम्बन्धों को प्रभावित करते हैं। जैसे पौधों के लिए कीट-नियन्त्रण आवश्यक है, उसी प्रकार हृदय की शुद्धि के लिए प्रार्थना, पवित्र संगति आदि आवश्यक है। कई युवा लड़के जो किसी से प्यार करते हैं, उन्हें अपनी गर्लफ्रेन्ड को किसी अन्य के साथ मित्रवत व्यवहार करते देखना असहनीय हो जाता है। यहाँ मुझे एक घटना याद आती है। एक दिन जब मैं अपने आश्रम-कार्यालय में था, तो एक युवक अत्यन्त उग्र अवस्था में आया और उसने मुझे एक चाकू दिया, जिसे वह मुझे सौंपना चाहता था। मेरे पूछने पर उसने स्वीकार किया कि वह एक युवती से प्रेम करता है। फिर एक दिन उसने देखा कि वह युवती, अपने सबसे अच्छे मित्र के साथ स्कूटर पर पीछे बैठ कर घूम रही है। युवक के लिए यह असहनीय था। वह अत्यन्त क्रोधित था एवं उन दोनों की हत्या करना चाहता था।

उसने अपने घर से एक चाकू लिया और अपने मार्ग पर आगे बढ़ा। किसी आन्तरिक स्वर से प्रेरित होकर वह मार्ग में आनेवाले रामकृष्ण मिशन के आश्रम में आया। मन्दिर पहुँचने के कुछ क्षण उपरान्त ही उसे शान्ति की अनुभूति हुई। उसने हत्या का विचार त्याग दिया और अपने घर लौट गया। कुछ दिनों पश्चात् उसके भीतर एक बार फिर प्रतिशोध की ज्वाला उठी, किन्तु राजकोट आश्रम में आकर वह पुनः शान्त हो गया। चौथी बार जब वही दुराग्रह उठा, तो वह मेरे पास आया। मन्दिर की पवित्र ऊर्जा ने उसके मन को शान्त कर दिया, यह कहकर उसने चाकू सौंप दिया। ईर्ष्या रोग रूपी कीट-नियन्त्रण के लिए प्रार्थना रूपी औषधि की आवश्यकता है।

७. जल – एक पौधे की अभिवृद्धि के लिए जिस तरह जल की सर्वाधिक आवश्यकता होती है, उसी तरह सम्बन्धों के सम्पोषण के लिए भी जल की आवश्यकता है। यह प्रेम रूपी जल है। श्री दीपक चोपड़ा कहते हैं कि पालन-पोषण में केवल प्रेम और प्रेम होता है। सम्बन्धों में प्रेम की आवश्यकता पर स्टीफन कोवे ने अपनी पुस्तक 'सेवन हैबिट्स ऑफ हाइली इफेक्टिव पीपल' एवं एरिक फ्रॉम ने अपनी पुस्तक 'आर्ट ऑफ लव' में विशेष बल दिया है। किन्तु यह प्रेम-जल मीठा हो, खारा नहीं।

जब मैं पोरबन्दर में था, मैंने पाया कि नियमित रूप से पानी देने के बावूजद पौधे नष्ट होते जा रहे हैं, क्योंकि वहाँ का पानी खारा था। इसलिए जैसे पौधे के विकास के लिए मीठे जल की आवश्यकता है, वैसे ही स्वस्थ सम्बन्धों के पोषण के लिए भी निःस्वार्थ प्रेम की आवश्यकता है। प्रेम दैवीय है, लेकिन जब इसमें स्वार्थ का मिश्रण हो जाता है, तब यह आसक्ति या मोह में रूपायित हो जाता है, जिसके परिणामस्वरूप सम्बन्धों में विफलता दिखाई देती है। त्याग के बिना प्रेम विकसित नहीं होगा। सेवा और त्याग हमेशा साथ-साथ चलते हैं। त्याग ही सम्बन्धों को पुष्ट करता है एवं त्याग के अनुपात में ही प्रेम में अभिवृद्धि होती है।

दीर्घकालीन सम्बन्धों के लिए सुझाव

मैं सुदीर्घ अवधि तक चलनेवाले सम्बन्धों के लिये सूत्र रूप में कुछ सुझाव दे रहा हूँ, ताकि वे सरलता से स्मरण रहें।

(अ) आकलन, स्वीकार एवं समायोजन – व्यक्ति को अन्य व्यक्ति का आकलन करना चाहिए। उसके सकारात्मक एवं नकारात्मक गुणों को जानना चाहिए एवं वे जैसे हैं, उन्हें उसे वैसे ही स्वीकार करना चाहिए। किसी भी सम्बन्ध में एक निश्चित आदान-प्रदान होना चाहिए एवं निज प्रकृति के अनुसार समायोजन करना चाहिए। वैचारिक मामलों में धारा के साथ बढ़ें एवं सिद्धान्तों के मामलों में चट्टानों की

तरह अडिग रहें। स्वामी तुरीयानन्द जी (स्वामी विवेकानन्द के गुरुभाई) ने संयुक्त राज्य अमेरिका में शान्ति आश्रम में एक अन्तेवासी को यह अमूल्य सुझाव दिया था। यह काम कर गया। यह कई मामलों में काम करता है। अधिकांशत: यह पाया गया कि सम्बन्धों में होनेवाला नब्बे प्रतिशत संघर्ष वैचारिक भिन्नता के कारण होता है। केवल १० प्रतिशत संघर्ष सिद्धान्तों के कारण होता है। इसलिए यदि आप अन्य व्यक्ति के विचारों के साथ सामंजस्य बिठाने का प्रयास करेंगे, तो वे भी आपके मूल्य को समझ सकेंगे। इस प्रकार सम्बन्ध सहजता से आगे बढ़ेगा। यह सिद्धान्त सभी प्रकार के सम्बन्धों जैसे – माता-पिता और बच्चों, पति-पत्नी, सम्बन्धियों, मित्रों, आश्रमों में एक समुदाय के रूप में रहनेवाले शिष्यों आदि के लिए सत्य है। मैं सफलता की कई कहानियाँ बता सकता हूँ। एक बार एक कम्पनी की एक महिला अधिकारी मेरे पास परामर्श के लिए आई। वह कुछ समय से योग और ध्यान का अभ्यास कर रही थी। अपना पूरा समय आध्यात्मिक गतिविधियों को समर्पित करने के लिए उसने अपनी नौकरी से त्यागपत्र दे दिया। उसके माता-पिता पहले से ही क्रोधित थे, क्योंकि वह विवाह के लिए भी तैयार नहीं थी। इसने आग में घी डालने का काम किया। परिवार में तनाव की स्थिति-निर्मित हो गई और उसकी मानसिक शान्ति बाधित हुई। इसलिए उसने मुझसे सम्पर्क किया। जब मैंने उससे पूछा कि कार्यालय से त्यागपत्र देने के पूर्व वह अपनी आध्यात्मिक गतिविधियों के लिये कितना समय दे रही थी। तो उसने कहा कि चार घंटे, लेकिन अब घर के तनावपूर्ण वातावरण में वह बिल्कुल भी समय नहीं दे पा रही थी। जब मैंने कहा कि अगर वह मेरा परामर्श माने, तो वह इसे बढ़ाकर ८ घंटे कर सकती है, तो वह सहर्ष तैयार हो गई।

स्वामी तुरीयानन्द जी महाराज

तत्पश्चात् मैंने उन्हें उक्त स्वर्ण-सिद्धान्त बताया। उसे परामर्श दिया कि यदि उनके माता-पिता रसोई के कार्य में, बाजार जाने या टेलीविजन देखने के समय उसका साथ चाहते हैं, तो उसे बिल्कुल सहयोग करना चाहिए। अपनी आध्यात्मिक गतिविधियों को आगे बढ़ाने के निर्णय के सम्बन्ध में, माता-पिता के विचारों के आगे नहीं झुकना चाहिए। बाद में उसने मुझे बताया कि इस सुझाव पर अमल करने के कारण माता-पिता अपनी बेटी के इस व्यवहार से प्रसन्न हुए और वह भी उतनी ही प्रसन्न रही, क्योंकि वह शान्तिपूर्ण वातावरण में अपनी आध्यात्मिक गतिविधियों को आगे बढ़ा पा रही थी।

(ब) व्यवहार – हम सभी महात्मा गाँधी के तीन बन्दरों से परिचित हैं, जो 'बुरा मत देखो, बुरा मत सुनो और बुरा मत कहो' का प्रतिनिधित्व करते हैं। जब रामकृष्ण मिशन के एक स्वामीजी स्विटजरलैंड गए, तो उन्हें झील के पास तीन बन्दरों की विचित्र मूर्ति दिखाई दी। पहले बन्दर की एक आँख खुली और दूसरी बन्द थी, दूसरे का एक कान खुला और दूसरा बन्द था और तीसरे का आधा मुँह खुला और आधा बन्द था। इन बन्दरों के महत्त्व पर विचार करने पर, उन्हें वेदों में वर्णित संस्कृत श्लोक का स्मरण हो आया, जिसका अर्थ है – 'अच्छी चीजें देखें, बुरी चीजें न देखें, अच्छी बातें सुनें, बुरी बातें न सुनें, अच्छी बातें बोलें, बुरी बातें न बोलें, इत्यादि और उन्हें उपरोक्त मूर्तिकला के पीछे का ज्ञान पता लगा। पीठ पीछे किसी की आलोचना करना या बुरा कहना, किसी सम्बन्ध के विनष्ट होने का निश्चित मार्ग है। बहुत अधिक स्पष्ट बोलने से भी आलोचना होती है। हमारे शास्त्र कहते हैं, 'सत्य बोलो, लेकिन अप्रिय सत्य मत बोलो।' यहाँ मैं एक ज्योतिषी की कहानी सुनाना चाहूँगा।

एक ज्योतिषी एक व्यक्ति के पास गया। ज्योतिषी ने उसकी हस्तरेखा पढ़कर कहा कि अपने सारे सम्बन्धियों की मृत्यु उसे देखनी पड़ेगी। यह सुनकर वह व्यक्ति अत्यधिक क्रोधित हो गया और शुल्क दिए बिना उसने ज्योतिषी को भगा दिया। निराश होकर ज्योतिषी अपने गुरु के पास पहुँचे और सारी घटना बताई। गुरु ने कहा कि वे दोनों एक ही आदमी के पास भेष बदल कर जाएँगे। वहाँ पहुँचकर गुरु ने उस व्यक्ति की हथेली देखकर कहा कि वह बहुत भाग्यशाली है। वह अपने सभी सम्बन्धियों से अधिक उम्र तक जीवित रहेगा। इससे वह व्यक्ति प्रसन्न हुआ और ज्योतिषियों को पुरस्कृत किया। यद्यपि तथ्यात्मक रूप से दोनों ही भविष्यवाणियाँ एक जैसी थीं, लेकिन कहने की मधुर शैली ने अन्तर उत्पन्न किया। सभी सम्बन्धों के लिए भी यही सत्य है। **(अगले अंक में समाप्य)**

रामगीता (५/२)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

श्रीलक्ष्मण जी ने श्रीराम से कहा कि ऐसा सुना दीजिए कि सब छोड़कर आपकी सेवा करें। और अन्त में कहा कि जिसको सुनकर शोक, मोह और भ्रम दूर हो जाये। इस सन्दर्भ में आप उस संवाद की ओर दृष्टि डालें, जहाँ सुमित्रा अम्बा से विदा लेने के लिए लक्ष्मणजी आए हुए हैं और माँ उन्हें बड़े भावपूर्ण शब्दों में सेवा करने का उपदेश देती हैं। आप किसी के शरीर की सेवा करें या अन्य किसी प्रकार से सेवा करें, आप को लग सकता है कि आप तो बड़ी सेवा कर सकते हैं। परम त्यागी लक्ष्मणजी को सुमित्रा माँ ने कहा – सेवा करने जा रहे हो न! तो लक्ष्मण याद रखना कि सेवा साधारण वस्तु नहीं है। तुम परिवार छोड़कर जा रहे हो, राज्य छोड़कर जा रहे हो, पत्नी को छोड़कर जा रहे हो। किन्तु इतनी वस्तुओं को और भी छोड़ देना। क्या? बोलीं – राग, ईर्ष्या को छोड़ देना। तुम बाहर से सबको छोड़कर भले ही चले जाओ, पर यदि तुम्हारे भीतर राग हुआ है और राग के स्थान पर अगर तुम्हारे मन में रोष है और क्रोध भी बना हुआ है, तुम्हारी किसी से होड़ या ईर्ष्या की वृत्ति है, तो कभी सेवा ठीक से नहीं हो सकती। सुमित्रा माँ ने कैसी अनोखी बात कह दी! मानो माँ का अभिप्राय यह है कि राज्य छोड़ देना, पद छोड़ देना, गृहस्थ जीवन छोड़ देना, इनका त्याग सरल है, पर राग, मद और मोह इन वृत्तियों से जब तक मुक्त न हुआ जाये, तब तक सेवा ठीक नहीं हो सकती। माँ आदेश देती हैं, याद रखना सेवा कब होगी?

सकल प्रकार बिकार बिहाई।
मन क्रम बचन करेहु सेवकाई।। २/७४/६

सब प्रकार के विकारों को छोड़कर मन, कर्म और वचन से सेवा करना। यदि ये सब विकार लेकर तुमने सेवा की, तो तुम्हारी सेवा पूर्ण नहीं है। आप इसे दृष्टान्त के रूप में यों ले लें, आपने सेवक से जल पीने के लिए माँगा और वह जल ले आया, पर हाथ में गंदगी लिपटी हुई है। जिस बर्तन में ले आया, वह बर्तन भी गंदा है और वह आपको जल लाकर दे दे।

हमारे मैथिलीशरण जी का अभी थोड़े दिन पहले का संस्मरण याद आता है। एक बड़े पदाधिकारी सेवानिवत्त हो चुके हैं, बड़े सुलझे हुये हैं, वे बैठे हुये थे। इन्होंने सेवक से कहा कि जल तो जरा ले आओ। जल थोड़ा दूर था। सेवक जब जल लेकर आया, तो उन्होंने पूछा कि जल साफ तो लाये हो न? तो वे अधिकारी हँसने लगे। तो क्या आप आशा करते हैं कि वह कहेगा कि गंदा जल लाया हूँ। यह पूछना ही गलत है। वह यह कहेगा ही नहीं कि मैं गंदा जल लाया हूँ। यह तो कोई पूछने की बात नहीं है। क्योंकि गंदगीवाले को गंदगी दिखाई नहीं देती। वह कभी नहीं कहेगा जल गंदा है, गिलास गंदा है। मानो इसका संकेत यह है कि वह सेवक गंदे हाथों से जल ले आया। उसके गंदे हाथों में कोई रोग के कीटाणु हैं। आपने जल पीया और वह रोग का कीटाणु बैठ गया आपके शरीर में। अब उसकी जो सेवा है, कैसी सेवा है ! उसने तो जल लाकर दिया। इसका अभिप्राय यह है कि आप यह आशा करते हैं कि आपका सेवक स्वच्छ हो, जल स्वच्छ हो और वह आपकी सेवा करे।

सबसे बड़ी स्वच्छता तो मन की है। सुमित्रा अम्बा ने कहा कि सेवा तभी पूरी हो सकती है, जब मन में किसी भी प्रकार का विकार शेष न रह जाये और इसलिए लक्ष्मणजी ने प्रभु से निवेदन किया, माँ ने मुझे आदेश दिया है, पर मैं कैसे दावा कर सकता हूँ कि मुझमें कोई दोष नहीं आ सकता है। इसके पीछे लक्ष्मणजी का भाव क्या था कि भैया भरत का आगमन सुनकर मेरे मन में संदेह हुआ और मुझे क्रोध आया, द्वेष में मैने न जाने क्या-क्या कह डाला। यह भले ही भगवान की दृष्टि में लक्ष्मण का प्रेम है। वे राम के प्रेम में इतने उतावले हैं, लेकिन श्रीलक्ष्मण कहते हैं कि प्रभु अगर मेरे अन्त:करण में कमी है, तभी तो मैं भरत भैया में बुराई देखने लगा। भरत भैया को मारने के लिए उद्यत हो गया। भक्तों की देखने की जो शैली है, वह यह नहीं है, जो बहुधा हम लोगों की है। हम लोगों की शैली है, यदि हममें दोष दिखाया जाये, तो अपने दोषों को कम कर देंगे और उसे दूसरे पर मढ़ देंगे कि यह तो तुम्हारे कारण है, स्वयं दोषमुक्त हैं।

अगर हम अपने अन्त:करण की प्रवृत्ति को सचमुच एक महान सत्य की उपलब्धि के लिए उसका प्रयोग, उपयोग करें, तो वह अच्छा होगा। किन्तु साधारणत: किसी को उसकी अपेक्षा ही नहीं है। क्योंकि किसी को अपने मन के रोगों की चिन्ता ही नहीं है। कभी एकाध बार कोई सज्जन आकर मुझसे पूछ देते हैं कि क्या बतावें, भजन में मन नहीं

लगता। बताइये, मन कैसे लगे? तो मैं उनसे पूछता हूँ कि भाई, भजन में मन नहीं लगता तो इसमें कोई परेशानी है क्या? अच्छी तरह से हँस रहे हैं, बोल रहे हैं, खेल रहे हैं। क्या मेरे सामने आते ही मन में चंचलता आ गई? बिल्कुल बनावटी सवाल ! बनावटी प्रश्न है ! मन आपका चंचल है, तो आप मेरे सामने आकर बेचैनी प्रगट करें। किन्तु ऐसा नहीं है। आपने अभ्यास डाल लिया है कि चलो, इनसे भी एक बार पूछ लें। देहातों में एक कहावत है कि 'नाई को देखकर बाल बढ़ जाते हैं।' किसी ने नाई देखा, तो कहा कि भइ, बाल बना दो। तो व्यंग्य में कहते हैं कि नाई को देखकर बाल बनवाने की बात याद आ गई। उसका अभिप्राय है कि ये जो मानसिक समस्याएँ हैं, वे क्षणिक हैं। एक क्षण में आती हैं और चली जाती हैं। अगर उस तरह के जीवन से आप संतुष्ट हैं, तो उसको सुनने में लाभ नहीं है। पर हाँ, यह लाभ अवश्य है कि संस्कार में हम यह दृष्टि पा सकें कि हम अपने अन्तर्जीवन के अपने मन को, अपनी बुद्धि को, अपने चित्त को, अपने अहंकार को पहचान सकें, देख सकें। समस्याओं का समाधान कैसे होता है, इसको श्रीरामचरित मानस के विविध पात्रों के माध्यम से स्पष्ट करने की चेष्टा की गई है। उसका बहिरंग पक्ष तो आप पढ़ते हैं, आनन्द लेते हैं। ठीक है, लेकिन उसके अन्तरंग में क्या है? जिसकी चर्चा चल रही थी। अभी श्रद्धेय स्वामीजी ने अखण्ड शब्द का स्मरण दिलाया। भगवान श्रीराम ने कौशल्या अम्बा को अपना अखण्ड रूप दिखालाया –

देखरावा मातहि निज अद्भुत रूप अखंड। १/२०१/०

वही शब्द है अखण्ड। इसी से मिलता-जुलता प्रसंग आता है कागभुशुण्डि का। उन्होंने अपना संस्मरण सुनाते हुए गरुड़जी से कहा – मैं जब मुनियों के पास जाता था, मुनियों से प्रार्थना करता था कि आप श्रीराम के दर्शन का उपाय मुझे बताइए, तो मुनि लोग कहा करते थे कि श्रीराम के दर्शन के लिए किसी प्रयत्न की आवश्यकता नहीं है। श्रीराम तो सर्वव्यापी हैं।

जेहि पूँछऊँ सोइ मुनि अस कहई।
ईस्वर सर्ब भूतमह अहई।। ७/१०९/१५

पर बड़ी सरलता से भुशुण्डिजी ने कहा, कहनेवाले ने कह दिया, आप ने सुन लिया और किसी के पूछने पर दुहरा दिया। पर इसकी बहुत सम्भावना है कि कहनेवाले और सुननेवाले को भी यह सत्य न दिखाई देता हो। शब्दों का ही हेर-फेर, शब्दों का ही आदान-प्रदान व्यवहार में दिखाई दे रहा हो। कागभुशुण्डिजी ने बड़ी सरलता से कहा –

निर्गुन मत मम हृदयँ न आवा। ७/११०/७

मैं भावुक, हृदयप्रधान था। मुनि लोग जो बौद्धिक बातें कहते थे, उसे मेरा हृदय स्वीकार नहीं करता था। फिर उनका आग्रह था कि नहीं, श्रीराम ही ईश्वर हैं और वे श्रीराम वही हैं, जो महाराज दशरथ के पुत्र हैं, उनके प्रांगण में जो लीला करते हैं। जो अवतार लेते हैं, वही राम ईश्वर हैं, अयोध्या में ही हैं, दशरथ के भवन में ही हैं, अन्यत्र कहीं नहीं हैं। मुनियों ने कहा कि वे सर्वत्र हैं, तो उन्होंने कहा कि मेरी समझ में यह बात नहीं आती। यह कोई बुरी बात नहीं है, कितनी बढ़िया बात है। सरलता से यह मान लेना कि हाँ, मैं अपने आपको, स्वयं को समझ नहीं पा रहा हूँ कि इस बात को जीवन में ग्रहण कर सकूँ या उतार सकूँ, यह भी होता है। उन्होंने स्वीकार किया। वह प्रसंग लम्बा है, उसे विस्तार से नहीं लूँगा।

सचमुच भगवान श्रीराम के वे महान भक्त थे। जब अयोध्या में भगवान जन्म लेते हैं, तो उस बाल-लीला में वे भी छोटे कौवे के रूप में वहाँ जाकर भगवान की बाल-लीला का आनन्द लेते हैं और पाँच वर्ष अयोध्या में रहते हैं –

बरष पाँच तहँ रहउँ लोभाई। ७/७४/४

गरुड़जी ने पूछा – भोजन कहाँ करते थे? बोले – भोजन का तो कहना ही क्या है –

लरिकाईं जहँ जहँ फिरहीं तहँ तहँ संग उड़ाउँ।
जूठनि परइ अजिर महँ सो उठाइ करी खाउँ।।
७/७५/क

कितना आनन्द था। हमारे बालक राम जो कुछ रसमय पदार्थ खाते थे, उनके मुख से जो जूठन के रूप में गिर जाता था, उसे ही खाकर आनन्द में डूबा रहता था। मानो यह एक भावनिष्ठा है। भाव का एक स्वरूप है, जहाँ पर भुशुण्डिजी का एक आग्रह है कि ये ही श्रीराम हैं और वे आनन्द लेते भी हैं।

प्रभु को एक दिन कौतुक सूझ गया कि नहीं, अब कुछ और भी भक्त को दिखलाना ही होगा। तब उस दिन नया खेल हुआ। माँ मालपुआ ले आईं, पर उससे भी अधिक आश्चर्य यह देखकर भुशुण्डिजी को हुआ कि भगवान ने मालपुआ दिखाकर भुशुण्डिजी को बुलाया। पहले तो जूठन गिरा देते थे – **जूठनि परइ अजिर महँ।** पर आज देखा, तो सोचने लगे कि आज तो नई बात है। यह मालपुआ,

जो रस से ओत-प्रोत है, प्रलोभन देकर प्रभु खिलाना चाहते हैं। पर आज तो बड़ा अनोखा कौतुक था। मालपुआ पीछे कर लिया। आश्चर्य, अपना हाथ पीछे कर लिया, दूर चले गये। बुलाया पर हाथ पीछे कर लिया। थोड़ी देर बाद फिर से मालपुआ दिखा दिया। पास गया, तो फिर हाथ पीछे कर लिया। इस तरह उन्होंने कई चक्कर कटवाए। मुझे बुरा लगा। मैं भी दूर चला गया। दूर चला गया, तो रोने लगे। रोने लगे, तो पास जाना चाहिए। पास गया, तो हँसने लगे, पर मालपुआ फिर भी नहीं दे रहे हैं। यह खेल चलते-चलते फिर वह वर्णन आया। भगवान ने निर्णय कर लिया, मालपुआ बड़ा रसीला तो होता ही है और इसका आनन्द भी मिलता है। भक्त तो रस में डूबा ही रहता है, वह इसका आनन्द लेता ही है, पर उसको तो तत्त्वज्ञान भी देना है, तत्त्व भी देना है। आप उसे पढ़ते हैं, मैं उसे संक्षेप में संकेत के रूप में कहूँगा। कागभुशुण्डि भागते हैं। जब आप मुझे मालपुआ देते ही नहीं है, तो मैं चला। तब एक नया खेल हुआ। वे मुनि कहते हैं, भगवान सर्वव्यापक हैं और वे जब दूर गये, तो दूर जाने का अर्थ है कि श्रीराम से दूर जाएँगे। दूर गये तो देखते क्या हैं?

तब मैं भागि चलेउँ उरगारी।
राम गहन कहँ भुजा पसारी।। ७/७८/७

भगवान ने हाथ बढ़ाया –

जिमि जिमि दूरि उड़ाउँ अकासा।
तहँ भुज हरि देखउँ निज पासा।। ७/७८/८
सप्ताबरण भेद करि जहाँ लगें गति मोरि।
गएउँ तहाँ प्रभु भुज निरखि ब्याकुल भयउँ बहोरि।।
७/७९/ख

जहाँ-जहाँ भुशुण्डि जाते हैं, प्रभु सर्वत्र अपनी भुजा का दर्शन कर बता देना चाहते हैं कि तुम अयोध्या के आंगन में भले ही आनन्द लो, पर यह न मान लेना कि मैं केवल वहीं हूँ। कहाँ जा रहे हो, जहाँ हो, तुम मुझे मानो, चाहे मेरी भुजा को मानो, अपनी सर्वव्यापकता का दर्शन करा दिया।

फिर उसके बाद देखते-देखते थक गया, तो 'मुँदेउ नयन' – आँख मूँद लिया। क्षणभर में जब आँख खोलकर देखा, तो अयोध्या में श्रीराम के सामने था। तब भगवान राम ने फिर नया खेल किया। भगवान हँसने लगे। हँसते ही भगवान का मुख खुला, छोटे से बालक का मुख खुला और उसमें कौवा प्रवेश कर गया। यह भी बड़ी विचित्र बात है ! वह प्रवेश कर जब पेट के भीतर गये, तो जैसे कौशल्याजी को अनगिनत ब्रह्माण्ड का दर्शन कराया था, वैसे ही कागभुशुण्डि को भी दिखाया –

राम उदर देखेउँ जग नाना।
देखत बनइ न जाइ बखाना।। ७/८१/५

राम के उदर में उन्होंने क्या देखा? अनोखा दृश्य था? श्रीराम के उदर में अनेक ब्रह्माण्ड थे और प्रत्येक ब्रह्माण्ड में श्रीराम का अवतार है। प्रत्येक ब्रह्माण्ड में अयोध्या में श्रीराम खेल रहे हैं। उससे भी बढ़कर आश्चर्य तब हुआ, वे मानते थे कि सारे ब्रह्माण्ड में भुशुण्डि केवल एक मैं ही हूँ, पर जब उन ब्रह्माण्डों में गये, तो देखा कि श्रीराम के साथ एक-एक भुशुण्डि हर ब्रह्माण्ड में हैं। मैं तो अपने आपको अकेला भक्त मान बैठा था, पर वहाँ तो हर ब्रह्माण्ड में भुशुण्डि हैं।

यह सब होते हुए भी, दूसरे दृश्य का तात्पर्य यह था कि जितने भी ब्रह्माण्ड हैं, वहाँ मैं हूँ, मेरी भुजा है। उससे भी गहराई में उन्होंने बताया कि इतना ही नहीं, अपितु यह समस्त ब्रह्माण्ड मेरे भीतर ही है, यह भी दिखा दिया। भुशुण्डिजी से पूछा गया कि कितने दिनों तक आप राम के उदर में घूमते रहे, तो उन्होंने कहा कि एक सौ एक कल्प तक घूमते रहा। महाराज बड़ी विचित्र बात है! श्रीराम के अवतार में उनका काल तेरह हजार वर्ष माना जाता है! उसके बाद वे लीला का संवरण कर लेते हैं। यह एक सौ एक कल्प तक, अयोध्या बनी रही, दशरथजी बने रहे? बोले उदर में तो लगा एक सौ एक कल्प, पर जब बाहर निकल कर आया, तो वहाँ की घड़ी में दिखाई दिया कि – **उभय घरी महँ मैं सब देखा। ७/८१/८**

दो घड़ी में मुझे एक सौ एक कल्पों की प्रतीति हुई। एक देश में समस्त देशों की अनुभूति हुई। समस्त ब्रह्माण्ड में भगवान की सत्ता का अनुभव हुआ। तब भगवान ने तुरन्त कहा, अब तुम आनन्द लो, मेरे साथ खेलो, प्रसाद लो, पर एक बात कह दिया कि एक बात का ध्यान रखना, पहले नहीं मानते थे कि मैं सर्वत्र हूँ –

जानेसु ब्रह्म अनादि अज अगुन गुनाकर मोहि। ७/८५/क

मैं गुणाकर दिखाई देता हूँ, पर अगुण हूँ और मैं व्यापक हूँ, अनादि हूँ, अज हूँ। 'अस बिचारि' ऐसा विचार करके दिव्य आनन्द रस का अनुभव करो। ऐसा दिव्य ज्ञान जिन्होंने प्रभु से ही खेल-खेल में प्राप्त कर लिया, वे कागभुशुण्डिजी हैं। **(क्रमशः)**

भारतीय ज्ञान-परम्परा

डॉ. सत्येन्दु शर्मा

प्रोफेसर, शा. महिला महाविद्यालय, रायपुर

मुण्डकोपनिषद में महर्षि अंगिरा ने बताया है कि विद्याएँ दो प्रकार की होती हैं – परा और अपरा। वेद-वेदांग आदि अपरा विद्यायें हैं और परा विद्या वह है, जिसके द्वारा वह अविनाशी ब्रह्म जाना जाता है। हमारी भारतीय परम्परा में परा विद्या सम्बन्धित उपनिषद् तथा अन्यान्य अनेक ग्रन्थ रचे गये हैं और अपरा विद्या सम्बन्धित भौतिक जीवन-जगत् के लिये उपयोगी सामग्री भी प्रचुरतया उपलब्ध है। हमारी बौद्धिक सम्पदा का प्राचीनतम प्रमाण वेदों से आरम्भ हुआ, जो अनवरत धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष विषयक विभिन्न शास्त्रों की रचना के साथ पुष्पित-पल्लवित होता रहा।

भारतीय मान्यता शास्त्र विद्या के साथ-साथ शस्त्र विद्या के उपार्जन में आस्था रखती रही है। इसलिए अस्त्र-शस्त्र के निर्माण और संचालन में भी हमारे पूर्वज उतने ही सिद्धहस्त थे। आज के आधुनिक युग में मिसाइलों के द्वारा बहुत दूर स्थित किसी लक्ष्य पर हमला करके वहाँ स्थित अवांछित शत्रु या सेना को नष्ट किया जा सकता है। बल्कि लक्ष्य स्थल पर उपस्थित निर्दोष लोगों के भी चिथड़े उड़ जाते हैं और अगर शत्रु या सेना उस स्थान से अलग चली गई हो, तो लक्ष्य-स्थल भले ही ध्वस्त हो जाए, पर शत्रु या सेना का विनाश नहीं होता। दूसरी ओर हमारे प्राचीन आख्यानों में सुदर्शन चक्र या ब्रह्मास्त्र जैसे अद्भुत अस्त्रों की चर्चा मिलती है, जो अभिलक्षित व्यक्ति कहीं भी स्थित हो या भाग चुका हो, या भारी भीड़ में समाया हो, तब भी किसी अन्य को क्षति पहुँचाए बिना लक्ष्य मात्र का विनाश करके ही वापस लौटता था।

इसी प्रकार आज एलोपैथ चिकित्सक धड़ल्ले से लीवर, किडनी, घुटने आदि अंगों का प्रत्यारोपण कर रहे हैं। लेकिन हमारे आख्यानों में अंग-प्रत्यारोपण की कथाओं से स्पष्ट होता है कि हमारे भारतीय महर्षियों को प्राचीन काल से ही यह विद्या ज्ञात थी और वे मनुष्य के शरीर में पशु आदि के अंग लेकर प्रत्यारोपण की विद्या में भी दक्ष थे। इस सम्बन्ध में महर्षि दधीचि की पौराणिक कथा दर्शनीय है।

महर्षि दधीचि ब्रह्म विद्या के ज्ञाता थे, जिससे अमरत्व प्राप्त हो जाता था। इन्द्र ने उन्हें कह रखा था कि यदि वे किसी को यह विद्या सिखलायेंगे, तो उनका सिर काट दिया जाएगा। अश्विन दोनों जुड़वे भाई ने जब जाकर महर्षि से ब्रह्म विद्या सीखने का अनुरोध किया, तब उन्हें इन्द्र की बात बताई गई। अश्विन देवों ने दधीचि को इन्द्र की शक्ति से बचाने के लिए एक योजना बनाई। उन्होंने दधीचि से यह कला सीखी, उनका सिर काटा और उसे सुरक्षित रखकर घोड़े का सिर लगा दिया। क्रोध में इन्द्र ने घोड़े के सिर वाले ऋषि का सिर काट दिया और चले गए। फिर अश्विन देवों ने दधीचि का सिर वापस लगाया और मधु विद्या से उन्हें पुनर्जीवित किया, जो उन्होंने उन्हें सिखाई थी।

इसी प्रकार से शिवपुराण में भगवान गणेश की कथा में अंग-प्रत्यारोपण का वर्णन दृष्टिगत होता है। माता पार्वती के आदेशानुसार अन्त:प्रवेश से रोके जाने पर भगवान शिव ने गणेशजी का सिर धड़ से अलग कर दिया। फिर माता पार्वती के रौद्र रूप को देखते हुये देवताओं के अनुरोध पर भगवान शिव ने एक हाथी का मस्तक गणेशजी के शरीर पर लगा दिया, जिस कारण गणेशजी गजानन नाम से लोक प्रसिद्ध हैं।

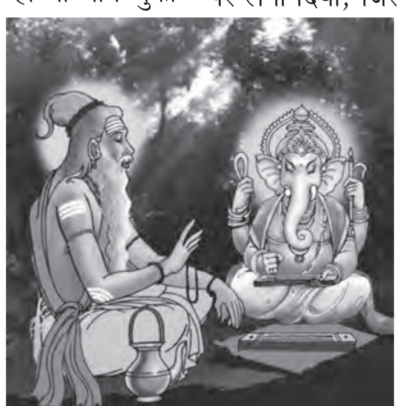

इसी प्रकार महर्षि व्यास ने गान्धारी के गर्भ के सौ टुकड़े करके प्रक्रिया विशेष द्वारा सौ पुत्रों की उत्पत्ति को सम्भव कर दिखाया। मेडिकल साइंस के लिए आज यह वृत्तान्त कल्पना और चुनौती हो सकती है, लेकिन आगे जब कभी अनुसन्धान में यह सम्भव हो सकेगा, तब इस कथा पर तथाकथित

तर्कवादियों को विश्वास हो सकेगा।

जर्मनी के संग्रहालय में रखी गयी, विविध रचनाकारों की रामायण की प्रतियों को एक भारतीय पर्यटक बड़े मुग्ध भाव से निहार रहा था। तब वहाँ खड़े हुये जर्मन ने उससे पूछा, क्या आप भारतीय हैं? 'हाँ' में सिर हिलाने पर जर्मन ने पूछा, तब तो आपने रामायण का अनुशीलन अवश्य किया होगा। भारतीय पर्यटक सकुचाते हुये बोला, पढ़ने का अवसर तो नहीं मिला, पर पूरी कथा सुनी है।

तब जर्मन ने कहा, आपने पढ़ी नहीं है। पर हमारे यहाँ रामायण की लक्ष्मण रेखा पर गहन अनुसन्धान चल रहा है। सीताजी की सुरक्षा को ध्यान में रखते हुये लक्ष्मणजी ने किस तकनीकी से रेखा खींची थी कि उसे पार करने में सीताजी पर कोई दुष्प्रभाव नहीं हुआ, जबकि उनके अतिरिक्त दूसरा कोई भी उस रेखा को पार करनेवाला जलकर भस्म हो जाता। हमारे वैज्ञानिक अनवरत उस लक्ष्मण रेखा की तकनीक का रहस्य सुलझाने में जी-जान से जुटे हैं।

१०वीं सदी के भारतीय रसायनशास्त्री रसरत्नाकर के लेखक नागार्जुन ने स्वर्ण बनाने की विधि की खोज की। १९वीं सदी के भारतीय ज्ञान-परम्परा के चमत्कारी महापुरुष स्वामी विशुद्धानन्द का वर्णन महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज की जीवनी में प्राप्त होता है, जिन्होंने तिब्बत स्थित गुप्त योगाश्रम ज्ञानगंज में रहकर अनेक विद्यायें प्राप्त की थीं। वे सूर्य-विज्ञान के विज्ञाता थे। एक भौतिक विज्ञान के प्राध्यापक के कहने से उन्होंने सूर्य-रश्मि के प्रभाव से रूई को रेड ग्रेनाइट स्टोन में परिवर्तित कर उन्हें दे दिया। इसी प्रकार प्रो. सरकार को सूर्य-विज्ञान का विश्वास दिलाने के लिए सामने ही चीनी-खजूर का एक पत्ता तोड़ा और लेंस द्वारा सूर्य का प्रकाश देकर पत्ते को पत्थर बना दिया। गोपीनाथ इन दोनों घटनाओं के साक्षी थे।

आज हमें विमानों में उड़ने की सुविधा प्राप्त है और राकेट आदि से अन्तरिक्ष की यात्रायें सम्भव हो रही हैं। पौराणिक आख्यानों में हम देखते हैं कि देवासुर-संग्राम में इन्द्र के बुलावे पर राजा दिलीप, राजा दशरथ और राजा दुष्यन्त आदि युद्ध में सहायता करने स्वर्ग लोक जाते हैं और विजय-प्राप्ति के पश्चात् पुन: अपने भूलोक वापस लौटते हैं और उनकी यह स्वर्ग-यात्रा उड़नेवाले रथों में सम्पन्न होती है। तात्पर्य यह है कि हमारे यहाँ रथ के रूप में विमान प्राचीनकाल से ही उपलब्ध थे। इसके अतिरिक्त वाल्मीकि रामायण में पुष्पक विमान और भागवत पुराण में सौभ विमान के वर्णन हैं।

भारद्वाज ने बृहद् विमानशास्त्र में विमान के तीन प्रकारों का उल्लेख किया है – मान्त्रिक – मन्त्र-प्रभाव से चलनेवाले, तान्त्रिक – तन्त्र-प्रभाव से चलनेवाले और कृतक – यन्त्रों से चलनेवाले –

मान्त्रिको तान्त्रिकश्चैव कृतकश्चेति शास्त्रतः।
जातिभेदस्त्रिधा प्रोक्ता विमानानां बुधैः क्रमात्।।[१]

इस ग्रन्थ में मान्त्रिक विमानों के पुष्पक, अजमुख आदि २५ प्रकारों के नामोल्लेख हैं, जिनमें एक पुष्पक नाम से हम परिचित हैं। तान्त्रिक विमान ५६ प्रकार के और कृतक विमान के २५ प्रकार के नामोल्लेख मिलते हैं।

सुन्दर नामक कृतक विमान के आकार तथा रचना-विधि बताते हुए कहा गया है कि यह ४००० कोस (७२० कि. मी.) प्रति घंटे के वेग से चलता है –

घटिकावच्छिन्नकाले योजनानां चतुश्शतम्।
विमानो वेगतो याति नात्र कार्या विचारणा।।[२]

त्रिपुरा नामक मान्त्रिक विमान की विशेषता उल्लेखनीय है। जिस सौर उर्जा से आज हम प्रकाश और वाहन-चालन आदि की सुविधा पा रहे हैं, उसी प्रकार यह सौर उर्जा से चलनेवाला विमान है –

भास्करांशुसमुद्भूतशक्त्या सचोदितो भवेत्।[३]

– भूमि, जल और अन्तरिक्ष में अपने अंग-भेद के कारण स्वत: चलने में समर्थ होने के कारण इसे त्रिपुर विमान कहा गया –

पृथिव्यपस्वन्तरिक्षेषु स्वाङ्गभेदात् स्वभावतः।
यः समर्थो भवेद् गन्तुं तमाहुस्त्रिपुरं बुधाः।।[४]

बृहद् विमानशास्त्र में विद्युत यन्त्र, विद्युत्शक्त्या, विद्युन्नालानि, विद्युत्तन्त्री आदि पद तथा वातनाल, वातचोदनायन्त्र, तैलपात्रम् आदि प्रयोगों से सूचित है कि वे विद्युत उत्पन्न करने, इन्धन की टंकी, वायु नली तथा वायु प्रेशर की मशीन आदि से परिचित थे।

अब आध्यात्मिक क्षेत्र में दृष्टिपात करें, तो भगवद्गीता ऐसा भारतीय ग्रन्थ है, जिस पर सारा संसार मुग्ध है। अल्बर्ट आइन्स्टीन ने कहा कि 'जब मैं भगवद्गीता पढ़ता हूँ, तो इसके अलावा सब कुछ मुझे काफी उथला लगता है।' परमाणु बम के जनक जूलियस रॉबर्ट ओपेनहाइमर गीता से इतने

प्रभावित थे कि उसकी प्रति हमेशा अपने साथ रखते थे। न्यू मैक्सिको में जब इनकी टीम ने पहला परमाणु परीक्षण किया, तो उनके मुँह से भगवद्गीता का यह श्लोक निकल पड़ा –

दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता।

यदि भाः सदृशी सा स्याद् भासस्तस्य महात्मनः।।[५]

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः।।[६]

इसी प्रकार अनेक यूरोपीय विद्वानों ने उपनिषद् ग्रन्थों की महिमा का गुण-गान किया है। डॉक्टर गोल्डस्टकर ने कहा कि वेदान्त सबसे उँचे दर्जे का यन्त्र है। मैक्समूलर ने कहा कि मुझे उपनिषदों में मानवी भाषा अपने उच्चतम शिखर पर पहुँच गयी प्रतीत होती है। शापेनहर ने तो यहाँ तक कह दिया कि संसार में ऐसा कोई ग्रन्थ नहीं है, जो उपनिषद् के समान उपयोगी और उन्नति की ओर ले जानेवाला हो। वे उच्चतम बुद्धि की उपज हैं। आगे या पीछे एक दिन ऐसा होना ही है कि यही जनता का धर्म होगा।

वास्तव में भारतीय परम्परा में अद्वैत दर्शन ने सर्वं खल्विदं ब्रह्म सूत्र से प्रत्येक जीव में ईश्वरीय सत्ता को स्वीकार करते हुए समत्व का जो संदेश दिया है, जिसका सरल रूप नीतिकारों द्वारा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' प्रस्तुत किया गया है, वह मानवता का सर्वोच्च आदर्श है, जिसके अनुप्रयोग के आकांक्षी संसार के सभी देश हैं। विवेकानन्द अद्वैत वेदान्त के इस सिद्धान्त को व्यावहारिक आचरण में लाने के लिए आजीवन संसारवासियों को प्रेरित करते रहे और विश्व में आपसी प्रेम का सन्देश वितरित किया। वे कहते थे – "ये मनुष्य और पशु, जिन्हें हम आस-पास और आगे-पीछे देख रहे हैं, ये ही हमारे ईश्वर हैं।"[७] हर एक स्त्री को, हर एक पुरुष को और सभी को ईश्वर के ही समान देखो। हम लोगों के जीवन का सर्वश्रेष्ठ सौभाग्य है कि हम इन भिन्न-भिन्न रूपों में विराजमान भगवान की सेवा कर सकते हैं।"[८] उपनिषद् को लक्ष्य कर विवेकानन्द ने भारतवासियों को सम्बोधित करते हुए कहा था – "तुम्हें याद रखना चाहिए कि ईसाइयों के लिये जैसे बाइबिल है, मुसलमानों के लिए कुरान, बौद्धों के लिए त्रिपिटक, पारसियों के लिए जेन्द अवेस्ता है, वैसे ही हमारे लिए उपनिषद् हैं।[९]

भारत से ही अंकों का आविष्कार हुआ। अंकगणित, बीजगणित और रेखागणित का प्रारम्भ यहीं से हुआ। जब एलोपैथ नहीं था, तब चरक और सुश्रुत ने आयुर्वेदिक उपचार और शल्य चिकित्सा के प्रामाणिक ग्रन्थ लिखे तथा आर्यभट्ट तथा वराहमिहिर ने खगोल विद्या को प्रकाशित करनेवाली कृतियाँ प्रस्तुत कीं। महर्षि पाणिनि की अष्टाध्यायी को सारे संसार में पूर्ण वैज्ञानिक व्याकरण ग्रन्थ माना गया। महर्षि यास्क ने निरुक्त ग्रन्थ के रूप में भाषा विज्ञान की आधार शिला रखी और महर्षि पतंजलि ने योगसूत्र लिखकर लोकोपकार किया।

महर्षि वाल्मीकि ने रामायण लिखकर भारत के साथ अनेक देशों में रामकथा की रम्य मनोहर अविरल, अक्षुण्ण धारा प्रवाहित की। महर्षि व्यास ने महाभारत और १८ पुराणों के साथ ब्रह्मसूत्र रचकर वेदान्त की भूमि तैयार की और कवि-कुल-गुरु कालिदास ने अपने काव्यों से संसार को ऐसा मुग्ध किया कि समीक्षकों ने यूरोपीय साहित्यकार शेक्सपियर से तुलना करते हुए कहा कि जहाँ जाकर शेक्सपियर की कल्पना समाप्त होती है, वहाँ से कालिदास की कल्पना का श्रीगणेश होता है। इस प्रकार प्राचीन काल से हमारी भारतीय ज्ञान-परम्परा अत्यन्त समृद्ध और गौरवमयी बनी रही, लेकिन विदेशी आक्रान्ताओं ने भारत की इस समृद्ध ज्ञान-परम्परा को नष्ट-भ्रष्ट करने में कोई कमी नहीं की, आप्राण प्रयत्न किया।

सातवीं सदी ईसापूर्व में तक्षशिला की स्थापना की गई थी, जो विश्व का प्रथम विश्वविद्यालय था और जहाँ पूरे संसार के १०,५०० से अधिक छात्र अध्ययन करते थे, उसे आक्रान्ताओं ने क्षतिग्रस्त कर दिया। इसी प्रकार ५वीं सदी में स्थापित नालन्दा विश्वविद्यालय में अध्ययन करने के लिए अनेक देशों के छात्र आते थे। जब चीनी यात्री ह्वेनसांग भारत आया था, उस समय नालन्दा विश्वविद्यालय में ८५०० छात्र एवं १५१० अध्यापक थे, किन्तु मुगल आक्रान्ताओं ने विश्वविद्यालय के साथ-साथ इसके समृद्ध पुस्तकालय को भी जलाकर भस्मसात् कर दिया।

१९वीं सदी में जब भारत पर ब्रिटिश शासन की स्थापना हुई, तब पराधीन भारत की अस्मिता को विनष्ट करने की नीयत से धूर्त लार्ड मैकाले ने १८३६ ई. में ब्रिटिश सरकार के स्वार्थ-साधन के लिए एक ऐसी कुत्सित शिक्षा-नीति तैयार की, जिसमें उसने अपना उद्देश्य स्पष्ट करते हुए स्वयं कहा – 'इस समय हमें एक ऐसा वर्ग बनाने का प्रयास करना चाहिए, जो हमारे तथा हमारे शासनाधीन करोड़ों लोगों के बीच द्विभाषिये का काम करे। ऐसे व्यक्तियों का वर्ग रक्त और

रंग में तो भारतीय हो, लेकिन रुचियों, विचारों, नैतिकता तथा बुद्धि की दृष्टि से अंग्रेज हो।' १८३६ को मैकाले ने अपने पिता को पत्र लिखा कि यदि हमारी शिक्षा की यह नीति सफल हो जाती है, तो ३० वर्ष के भीतर बंगाल के उच्च घराने में एक भी मूर्ति-पूजक नहीं बचेगा।

हमारे स्वाभिमान को कुचलने और हीनभावना से ग्रस्त करने हेतु मैकाले ने कहा कि किसी एक यूरोपियन पुस्तकालय की एक आलमारी के एक खानें में जितना ज्ञान भरा होता है, उसकी तुलना में भारत तथा अरब का समूचा साहित्य कुछ भी नहीं है। इस प्रकार मैकाले की मक्कार सोच के अनुसार ब्रिटिश सरकार ने एक ओर अपने शासन में सहयोग करनेवाले केवल बाबू तैयार करनेवाली शिक्षा नीति लागू कर दी और दूसरी ओर भारत की समृद्ध विरासत को तुच्छ तथा निरर्थक प्रचारित करते हुए देशवासियों के मन में अपनी ही सांस्कृतिक विचारधारा एवं ज्ञान-परम्परा के प्रति कुण्ठा भरने का षड्यन्त्र रचा। इसके परिणामस्वरूप देश में एक बहुत बड़ा समूह अपने ही गौरवमय सांस्कृतिक विरासत के प्रति कुण्ठा का शिकार बन गया।

भारतीय ज्ञान-परम्परा के युगनायक स्वामी विवेकानन्द ब्रिटिश सरकार द्वारा थोपी गई इस शिक्षा नीति के दुष्परिणामों को जानते हुए स्पष्ट कटाक्ष करते हुए कहते थे – ''कोई बालक जब विद्यालय में प्रवेश लेता है, तब सबसे पहले उसे यही बात सिखाई जाती है कि तुम्हारा बाप मूर्ख है, दादा पागल है, तुम्हारे सारे शिक्षक पाखण्डी हैं और तुम्हारे समस्त पवित्र धर्म-ग्रन्थों में झूठी और कपोल-कल्पित बातें भरी हुई हैं और ऐसी निषेधात्मक बातें सीखते-सीखते १६ वर्ष की आयु तक वह निषेधों का ढेर बन चुका होता है।''

भारतीय परम्परा के अनुरूप स्वामी विवेकानन्द गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली के पक्षधर थे। उनके मत में शिक्षा का अर्थ था – मनुष्य-निर्माण। उनका स्पष्ट अभिमत था कि ''जिस शिक्षा से हम अपना जीवन-निर्माण कर सकें, मनुष्य बन सकें, चरित्र-गठन कर सकें और विचारों का सामंजस्य कर सकें, वही वास्तव में शिक्षा कहलाने योग्य है।''[१०]

वास्तव में भारतीय गुरुकुलों का उद्देश्य छात्रों को केवल शास्त्रों की शिक्षा देना नहीं, बल्कि उनके सर्वांगीण व्यक्तित्व का विकास करना होता था। छात्र गुरुकुल से विद्यार्जन के साथ एक आत्मनिर्भर, संस्कारवान् और नैतिक चरित्र लेकर समाज में वापस आता था, जो अपने साथ-साथ समाज तथा राष्ट्र के अभ्युदय का सक्षम संसाधन हुआ करता था। गुरुकुल की ज्ञान-परम्परा सांसारिक विद्या के साथ आध्यात्मिक विद्या भी प्रदान करती थी, जो विद्या संसार के समस्त जीवों को आत्मवत् देखने-समझने की मति प्रदान करती थी – आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः। यही विचार भगवद्गीता में भी श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को कहा गया –

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।

शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः।।[११]

हमारे ऋषियों ने धर्म की परिभाषा दी थी – **यतोऽभ्युदय-निःश्रेयस् सिद्धिः स धर्मः** – अर्थात् जिससे अपना भौतिक उत्थान हो और अध्यात्म सिद्ध हो सके, वही धर्म है। ज्ञान के सम्बन्ध में भी यही समान विचारधारा ध्वनित होती है – **यतोऽभ्युदय-निःश्रेयस् सिद्धिः तद् ज्ञानम्।**

१९४७ में हमारा देश स्वतन्त्र हो गया, लेकिन सम्भवतः दासता की मानसिकता इतनी हावी रही कि शिक्षा प्रणाली में यथेष्ट परिवर्तन नहीं किया गया। राष्ट्रीय शिक्षा नीति २०२० के अन्तर्गत राष्ट्रीय स्वाभिमान जागरण तथा स्वदेशी ज्ञान-परम्परा के मूल्यों को लक्ष्य कर पाठ्यक्रमों में मानव मूल्य, नैतिक मूल्य, भारतीय ज्ञान-परम्परा जैसे विषयों का समावेश किया गया है कि हम अपने अतीत की उच्चतम विरासत से स्वयं परिचित होकर गौरवान्वित हों और विश्व के अन्य देशों में इसका प्रचार कर सर्वजन हित-साधना के भागी बनें।

ऐसी ही लोकोपकारी विचारधारा के अन्तर्गत हमारे भारत के प्रधानमन्त्री श्री नरेन्द्र मोदी जी ने सितम्बर, २०१४ में संयुक्त राष्ट्र महासभा में पहली बार 'अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस' मनाने का प्रस्ताव रखा था, जिसे १७७ सदस्यों द्वारा स्वीकार किया गया और २०१५ से प्रतिवर्ष २१ जून को 'अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस' मनाया जाता है। इस प्रकार आज सम्पूर्ण विश्व योगविद्या से लाभान्वित हो रहा है।

निष्कर्ष रूप में यही कहना समुचित होगा कि भारतीय ज्ञान-परम्परा का परम प्रयोजन मनुष्य से देवत्व की यात्रा है और लोक-मंगल के साथ-साथ जीवन को सार्थक बनाते हुये ईश्वरत्व की प्राप्ति है। ○○○

सन्दर्भ सूत्र – १. बृहद् विमानशास्त्र, पृ.४८ **२.** वही, पृ. २९० **३.** वही, पृ. ३०२ **४.** वही, पृ.३०२ **५.** भगवद्गीता, ११/१२ **६.** वही, ११/३२ **७.** भारतीय व्याख्यान, पृ. २४० **८.** वही, पृ. १७४-१७५ **९.** वही, पृ. २७८ **१०.** वही, पृ.२४९ **११.** भगवद्गीता, ५/१८

एवरेस्ट की चढ़ाई में दृष्टि बाधक नहीं

श्रीमती मिताली सिंह, बिलासपुर

''तुम्हारे पास जो भी समय है, उसका सदुपयोग करो। यह सोचने में समय मत गँवाओ कि तुम्हारे पास क्या नहीं है?'' बच्चो ! स्वामी विवेकानन्द जी के इस कथन को सत्यपित करनेवाली हिमाचल के किनौर जिले के हंगराल घाटी की रहनेवाली भारत की पहली दृष्टिहीन महिला 'छोजिन अंगमो' के बारे में जानेंगे, जिसने माउंट-एवरेस्ट की चोटी पर भारत का तिरंगा लहराकर इतिहास बनाया है। वह एक रिकॉर्ड ही नहीं, उन लोगों को प्रेरणा प्रदान करती है, जो अपने को अलग समझते हैं। वह कहती हैं, ''जब मैंने माउंट एवरेस्ट की चोटी पर कदम रखा, तो मुझे यह ध्यान था कि जीवन में प्रत्येक कदम का महत्त्व है, चाहे आप सामान्य हों या विशेष रूप से सक्षम हों। यदि हमारी इच्छाशक्ति मजबूत हो, तो हमें कोई भी चीज रोक नहीं सकती।''

छोजिन अंगमो के माता-पिता का नाम अमरचंद और सोनम छोमो है। वे भारत ही नहीं, सम्पूर्ण विश्व की पाँचवीं दृष्टिहीन पर्वतारोही बन चुकी हैं, जिन्होंने माउन्ट एवरेस्ट की चोटी पर तिरंगा लहराया। बचपन में ही ८ वर्ष की आयु में दवाई के दुष्प्रभाव के कारण वह दृष्टिहीन हो गई, पर कभी हार नहीं मानी। दिल्ली विश्वविद्यालय से एम.ए. की डिग्री प्राप्त करनेवाली और यूनियन बैंक में नौकरी करनेवाली साहसी महिला ने न केवल भारत; बल्कि पूरे विश्व में हिमाचल के नाम को गौरवान्वित किया है। इससे पहले उसने लद्दाख में ६२५० मीटर पहाड़ की चढ़ाई कर अपने साहस का परिचय दिया था। छोजिन की प्रेरणा थी हेलन किलर, जिनके कथन थे – 'दृष्टि बाधित होने से बुरी बात है आँखों के होते हुए भी कोई सपना न देखना'। छोजिन को इन बातों ने प्रेरणा दी। उसने अपनी दृष्टिहीनता और आर्थिक बाधा को अपनी दुर्बलता कभी नहीं बनने दिया और अपने बचपन के सपनों को साकार करने के लिये प्रत्येक चुनौती का सामना किया। अब वह उन सब चोटियों पर चढ़ने का निश्चय कर चुकी हैं। पिछले वर्ष छोजिन ने ५०,३६४ मी. ऊँचे एवरेस्ट बेस कैम्प तक ट्रिप पूरी करके पहली दृष्टि बाधित भारतीय महिला बनने का गौरव प्राप्त किया। वह दिव्यांग-अभयांग दल की सदस्य रह चुकी है और राष्ट्रीय स्तर पर दो कांस्य पदक विजेता भी है। इसके अतिरिक्त दिल्ली मैराथन, पिंक मैराथन और वेदान्त दिल्ली मैराथन में भाग लेकर अपनी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय दिया है। छोजिन पर्वतारोहण के साथ रनिंग, साइकिलिंग, जूड़ो, फुटबाल, क्रिकेट भी खेलती हैं। छोजिन की कहानी हर उस व्यक्ति के लिए प्रेरणा है, जो जीवन में किसी कमी को कमजोरी मानकर अपने को असफल मान लेता है। उनके लगन, साहस, उमंग ने यह प्रमाणित कर दिया है कि अगर मन में सपने को पूरा करने की इच्छा हो, तो कोई भी बाधा आपको रोक नहीं सकती। वह कहती है, ''दृष्टिहीनता उनके लिए कभी बाधा नहीं बनी, बल्कि यह उनके लिए एक नई दृष्टि बनकर उभरी, जिसने उसे संसार की सबसे ऊँची चोटी तक पहुँचाया।

तो बच्चो! छोजिन की कहानी हमें सिखाती है कि असम्भव कुछ भी नहीं है। आवश्यकता है दृढ़ संकल्प और अटूट उत्साह की। छोजिन की यह यात्रा सपने को वास्तविकता में बदलना सिखाती है। ○○○

पार्श्वनाथ की जन्मभूमि

स्वामी ब्रह्मेशानन्द

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी

वाराणसी के भेलूपुर नामक मुहल्ले में २३वें जैन तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ का जन्म-स्थान है। यहाँ तीन जैन मन्दिर हैं, एक दिगम्बर और दो श्वेताम्बर हैं। जैन धर्म २४ तीर्थंकर या जैन अवतारों को मानता है। इनमें से अन्तिम दो ही ऐतिहासिक हैं, अन्य २२ पौराणिक ही हैं। चौबीसवें तीर्थंकर महावीर और तेइसवें पार्श्वनाथ ही ऐतिहासिक माने जाते हैं। दोनों ने ही वाराणसी में उपदेश दिये थे।

जैन धर्म के अनुसार प्रत्येक तीर्थंकर के जीवन में पाँच महत्त्वपूर्ण घटनाएँ होती हैं, यथा (१) च्यवन, अर्थात् उनका माता के गर्भ में प्रवेश, (२) जन्म (३) आध्यात्मिक दीक्षा (४) उच्चतम तत्त्वज्ञान, जो जैन धर्म में 'केवल ज्ञान' कहलाता है और (५) देह-त्याग रूप अन्तिम मुक्ति। यह स्थान पार्श्वनाथ का जन्म-स्थान होने के साथ ही साथ च्यवन और आध्यात्मिक दीक्षा का स्थान भी माना जाता है।

पार्श्वनाथ का जन्म ईसा पूर्व ८७२वें वर्ष में उस समय हुआ था, जब उनके पिता अश्वसेन वाराणसी पर राज्य करते थे। युवराज होते हुए भी उन्होंने युवावस्था में ही संसार त्याग कर संन्यास ग्रहण कर लिया। उन्होंने झारखंड में स्थित सम्मेत-शिखर या पार्श्वनाथ हिल के नाम से प्रसिद्ध एक पर्वत पर तपस्या की तथा उसी के शिखर पर अपना शरीर त्यागा। यह पर्वत जैन तीर्थंकरों और अन्य जैन तपस्वियों की पुरातन काल से तपोभूमि रहा है और आज भी बहुत से लोग यहाँ साधना करते हैं। वाराणसी को पार्श्वनाथ के अतिरिक्त तीन और जैन तीर्थंकरों की जन्मभूमि माना जाता है। वे हैं – सुपार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभ और श्रेयांशनाथ। जैनों की मान्यता है कि पार्श्वनाथ ने अहिंसा, सत्य, अस्तेय और अपरिग्रह, इन चार महाव्रतों का उपदेश दिया था, जबकि अन्तिम तीर्थंकर महावीर ने इनके साथ ब्रह्मचर्य का योग कर पाँच महाव्रतों का उपदेश दिया।

जिन प्रभा सूरी द्वारा १४वीं शताब्दी में रचित विविध तीर्थ-कल्प ग्रन्थ में इस सुन्दर मन्दिर का विस्तृत विवरण है। यह मन्दिर बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से लगभग तीन किलोमीटर दूर है और जैसा कहा गया है, यह दिगम्बर और श्वेताम्बर, दोनों ही जैन धर्म-सम्प्रदायों का एक पवित्र तीर्थ-स्थान है। इनके 'मूलनायक' ७५ सेन्टीमीटर या २.४६ फीट ऊँची एक करेली दिगम्बर मूर्ति तथा ६० सेन्टीमीटर या दो फीट ऊँची श्वेताम्बर मूर्ति है। सम्भवत: ये ९वीं से ११वीं शताब्दियों की हैं।

मन्दिर-प्रांगण वाराणसी के व्यस्त स्थान में होते हुए भी अत्यन्त शान्त है। इसका एक कारण यह है कि यह मुख्य मार्ग से लगभग ५० गज अन्दर की ओर है तथा उसके पीछे महाराज विजयनगरम् के एक विशाल भूमिखण्ड की ऊँची दीवार है, जिससे पीछे से आनेवाली ध्वनि, मन्दिर तक नहीं पहुँच पाती। मन्दिर हल्के पीले रंग का है तथा उसका स्थापत्य अच्छा है। तीर्थंकर पार्श्वनाथ की मूर्ति के

अतिरिक्त अनेक सर्पों की भी मूर्तियाँ हैं, क्योंकि जैन धर्म में सर्प पार्श्वनाथ के प्रतीक माने जाते हैं। मन्दिर की दीवारों पर अनेक पौराणिक कथाओं के चित्र हैं।

इस पार्श्वनाथ जन्म-स्थान पर पहुँचना आसान है। भेलूपुर रोड पर पूर्व की ओर चलते हुये दक्षिण दिशा की एक छोटी गली में जाना पड़ता है, जो सीधे दिगम्बर मन्दिर पहुँचा देती है। सामने कई सीढ़ियाँ हैं, जिनसे चढ़कर मन्दिर के भीतर प्रवेश किया जाता है और सामने मूर्ति दिखाई देती है। बाहर मन्दिर के ठीक सामने एक ऊँचा मान स्तम्भ है। दोनों ओर भक्तों के रहने के लिए धर्मशालायें हैं।

इस दिगम्बर प्रांगण से निकलकर पूर्व की ओर कुछ कदम चलने पर ही श्वेताम्बर मन्दिर के प्रांगण में पहुँचा जाता है। इस श्वेताम्बर मन्दिर के पूर्व में कुछ ही दूर 'दादाबाड़ी' नामक एक छोटा-सा देवालय है, जिसमें तीन 'गुरुओं' की मूर्तियाँ हैं। मध्य में अकबर के काल में वर्तमान जैन आचार्य जिन दत्तसूरी की मूर्ति है और उसके दोनों ओर उनके दो शिष्यों और उत्तराधिकारियों की मूर्तियाँ हैं। यह स्थान अत्यन्त शान्त रहता है तथा ध्यान के लिए अत्यन्त उपयुक्त है। एक समय कई वर्षों तक मैं नियमित रूप से सप्ताह में एक दिन सायंकाल यहाँ आकर ध्यान किया करता था तथा अन्य साथी संन्यासियों को भी लाया करता था।

एक छोटी-सी घटना के वर्णन के साथ में अपना वक्तव्य समाप्त करूँगा। एक बार रामकृष्ण मिशन से परिचित एक अमेरिकी ईसाई पादरी वाराणसी आये। रविवार था और उस दिन मैंने बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के कुछ अध्यापकों को भी इस जैन मन्दिर में ध्यान के लिए बुलाया था। पादरी भी आये थे। सबके सम्मिलित होने पर मैंने पादरीजी से कहा कि वे ईसाई पद्धति से प्रार्थना करना हमें सिखायें। पादरीजी ने अपना वक्तव्य इस प्रकार प्रारम्भ किया – ''एक जैन मन्दिर के प्रांगण में, हिन्दू विश्वविद्यालय के अध्यापकों को एक ईसाई पादरी, ईसाई पद्धति से प्रार्थना करना सिखाये, ऐसा विश्व में और कहीं नहीं, केवल भारत में ही सम्भव है।'' ○○○

कविता

अवशेष पूर्ण ही रहता है

श्रीधर द्विवेदी, डाल्टनगंज, झारखण्ड

है यह पूर्ण, पूर्ण है वह भी,
लय पूर्ण पूर्ण में करता है ।
लेता पूर्ण पूर्ण से पर,
अवशेष पूर्ण ही रहता है ।।
दैहिक दैविक या आध्यात्मिक
हो शमन जगत त्रय तापों का ।
है पाप-पुण्य से परे पूर्ण
पर क्षयकर्ता सब पापों का ।।

हे प्रभु ! कवन जतन कर पाऊँ

स्वामी मैथिलीशरण, ऋषिकेश

हे प्रभु! कवन जतन कर पाऊँ ।
जानत हूँ अनुराग राम सों केहि बिधि हिए में लाऊँ ।।
तव मुख दंत पंक्ति होठन की शोभा केहि सम भाऊँ ।
अंजन नेत्र गाल पर लटकन पलक खोल चल जाऊँ ।।
कमल मूल ज्यों चिबुक लसत है चिबुकन युगल बनाऊँ ।
अधर धरूँ मैं निज अधरन पै निस दिन लाड़ लड़ाऊँ ।।
कवन पुन्य कोसला मातु को सोच सोच उरझाऊँ ।
हृदय लगाइ बनूँ मैं दर्पण राम रूप कहलाऊँ ।।
करुणामय तुम तनिक द्रवउ अब कहु केहि आस धराऊँ ।
नातो अब मैथिली नाम को अनत कहाँ मैं जाऊँ ।।

सनातन धर्म

प्रव्राजिका बोधस्वरूपप्राणा

श्रीसारदा मठ, दक्षिणेश्वर

प्रातर्नमामि तमसः परमर्कवर्णं
पूर्णं सनातनपदं पुरुषोत्तमाख्यम्।
यस्मिन्निदं जगदशेषमशेषमूर्तौ
रज्जौ भुजङ्गमिव प्रतिभासितं वै।।

'प्रात:काल में मैं उस परमात्मा को नमन करती हूँ, जो अन्धकार से परे है, जिनको अन्धकार स्पर्श नहीं कर सकता। जिनका वर्ण सूर्य के समान है। जो पूर्ण है, सनातन है, अर्थात् नित्य है। यह जगत् ससीम है। परमात्मा कैसे हैं? वे अशेषमूर्तौ – अर्थात् असीम हैं, उनकी इयत्ता नहीं की जा सकती। वे सर्वव्याप्त हैं। परन्तु रज्जु पर जैसे सर्प प्रतिभासित होता है, तब हम रज्जु को नहीं देख पाते। केवल साँप ही देखते हैं। वैसे ही हम सर्वव्यापी, नित्य, पूर्ण परमात्मा को नहीं देख पाते। देख पाते हैं ससीम, क्षणभंगुर, अपूर्ण जगत को।'

यहाँ 'जगत' शब्द महत्त्वपूर्ण है। जो सदैव चला जा रहा है, नित्य परिवर्तनशील है, वह जगत है। अब इस अनित्य जगत में सत्य सनातन परमात्मा को कैसे अनुभव करेंगे? इसका अवलोकन हम 'सनातन धर्म' की पृष्ठभूमि पर, इसके आधार पर, इसी की सहायता से करने का प्रयास करते हैं।

सनातन धर्म वेदप्रणीत धर्म है। वेद अपौरुषेय है। स्वामी विवेकानन्द ने इसे विस्तार से अति सुन्दर ढंग से समझाया है, जिसे हम यहाँ बड़े ही संक्षेप में देखेंगे। वेद कोई मुद्रित ग्रन्थ नहीं है, जो काल के साथ नष्ट हो जाये। यह भिन्न-भिन्न समय में विभिन्न व्यक्तियों द्वारा जिन्हें हम ऋषि-मुनि कहते हैं, जो आध्यात्मिक सत्य अनुभवी हुए, उनका संचित कोष है।

व्याख्या : वेद – वेद अर्थात् ज्ञान। वेद शब्द 'विद् धातु से निष्पन्न हुआ है। विद् का अर्थ ज्ञान होता है। तो वेद हुये ज्ञान-राशि। यह ज्ञान व्यक्ति-सापेक्ष नहीं है, इसलिए वेद को सनातन कहते हैं। ये आदि और अन्तरहित हैं। व्याख्या – ऋष् धातु से ऋषि शब्द हुआ है। 'ऋष्' अर्थात् दर्शन। तो जिन्होंने सत्य के दर्शन किये हैं, जिनको, सत्यानुभूति हुई है, वे हुये ऋषि। मुनि – 'मन्' धातु से मुनि बनता है। 'मन्' अर्थात् मनन करना। जो मनन करते हैं, वे हुये मुनि। इसी से 'मौन' शब्द हुआ है। मौन अर्थात् साधक जब मनन करते हैं, तब उनकी बाह्य अभिव्यक्ति कम रहती है। अधिक बात करने में असमर्थ हैं, इसलिए वे चुप हो गये, शान्त हो गये। इसलिये सनातन धर्म भी चिरन्तन है, शाश्वत है।

व्याख्या – सनातन – 'तन्' शब्द काल को दर्शाता है। जैसे - सनातन, चिरन्तन, पुरातन, नूतन। सनातन अर्थात् नित्य। जिसका कभी नाश नहीं होता है। धर्म 'धृ' धातु से बना है। अर्थात् जो मनुष्य को धारण करता है। उसका पोषण करता है। हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई धर्म – ऐसा इसका अर्थ नहीं है। निश्चित तत्त्व जो मनुष्य को शक्ति प्रदान करते हैं, उसको उसके स्वरूप की ओर ले जाते हैं, वह तत्त्व जो मनुष्य को धारण करता है एवं उसकी मानसिकता का पोषण करता है, धर्म है। यह धर्म किसी विशिष्ट सम्प्रदाय, मत या व्यक्ति द्वारा प्रतिष्ठित नहीं है, यह तत्त्वों पर आधारित है। इन तत्त्वों के मूल में है आध्यात्मिक अनुभूत सत्य। अनादिकाल से एक ही गुणवत्ता इसकी कसौटी रही है। इसमें कहीं घटती-बढ़ती नहीं। कोई काल या स्थान इसे प्रभावित नहीं कर सकता। जगत् इसमें विकार नहीं उत्पन्न कर सकता। इसलिये यह अविकारी है, अविनाशी है एवं सभी के लिए समान सत्य है।

अब हम जगत् को देखते हैं। यह इन्द्रियगोचर है। मनुष्य से लेकर सभी प्राणी अपनी-अपनी आवश्यक पूर्ति जुटाने में लगे हैं। ईश्वर इस जगत का नियन्ता होने के कारण नर-नारी, पशु-पक्षी, कीट-पतंग सभी की व्यवस्था यहाँ है। उनके आवश्यक साधन उन्हें उपलब्ध हो जाते हैं। सृष्टि का कालचक्र चलता रहता है और सब जीव-जन्तु उसके साथ जन्म-मृत्यु के फेरे लगाते रहते हैं। उसमें घूमते-घूमते

सृष्टिकर्ता की करुणा से ही हम उससे बाहर आते हैं। कब आते हैं? जब हम इच्छानुसार प्राप्त साधनों की पूर्ति से भी सन्तुष्ट नहीं हो पाते। क्योंकि भोग हमें कभी शान्ति प्रदान नहीं कर सकते। इस अशान्ति के कारण ही मनुष्य जाने-अनजाने सेवा और परोपकार से प्रेरित होकर धर्म की ओर अग्रसर होने लगता है। क्योंकि धर्म ही उसके जीवन की मुख्य आवश्यकता है। यह उसके जीवन का अविभाज्य घटक है। देश-काल परक सृष्टि में नव-नवीन धर्मों का उदय होता रहा। उसमें से और भी नये-नये कितने मत, पन्थ और सम्प्रदाय-निर्माण होते रहे। सभी लोग अपनी रुचि-भेद के अनुसार उनको ग्रहण करते रहे। भगवान श्रीरामकृष्ण देव कहते हैं – एक माँ अपने बच्चों के लिए आलू की सब्जी बनाती है। उसके चार बच्चे हैं। तो माँ उनकी रुचि के अनुसार जिसके पेट को जैसा सहता है, वैसी सब्जी बनाती है। जैसे एक के लिए आलू की रसदार सब्जी तो दूसरे के लिए उसकी सूखी सब्जी। तीसरे के लिए कटे और भूने आलू और छोटे के लिए तो खाली उबला हुआ आलू। इसी प्रकार संसार में भी एक ही धर्म या सम्प्रदाय से काम नहीं चलता। इसीलिये भगवान ने नाना धर्म-सम्प्रदाय मनुष्य के लिए बनाये हैं। सनातन धर्म की यह विशेषता है कि वह मनुष्य को उसकी रुचि का मार्ग चुनने की, जिसकी जहाँ श्रद्धा है, उस धर्माचरण की स्वतन्त्रता प्रदान करता है। उसने सभी पथ सबके लिए खुले रखे हैं।

सभी धर्मों का जनक यह सनातन धर्म ही कहता है, जितने मत उतने पथ। क्योंकि उसे यह ज्ञात है कि एक ही धर्म सबके लिए नहीं हो सकता। सबके रुचि-भेदानुसार भगवान ने ही ये सब धर्म-निर्माण किये हैं। क्योंकि विविधता ही सृष्टि है। भिन्नता में अभिन्नता और एकता में अनेकता यह है सृष्टि का नियम। स्वामीजी कहते हैं, ये भेद वास्तव में भेद ही नहीं हैं। ऊपर से ये भेद दिखते हैं। यह व्यावहारिक भेद है। समानता में तो सृष्टि का लय हो जाता है। इसलिए यह व्यावहारिक भेद अनिवार्य है। यदि हम सभी पुरुषों को 'राम' के नाम से और सभी महिलाओं को 'सीता' कहकर पुकारेंगे, तो देखिए क्या होता है? व्यावहार पूरे रुक जायेंगे। सभी चार पैरों के प्राणियों को गाय कहेंगे, तो पशु-प्राणियों की कोई पहचान ही नहीं रहेगी। मनुष्य जीवित है, उसकी पहचान ही है यह विविधता। भगवान श्रीकृष्ण गीता में यह सुस्पष्ट कहते हैं –

मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव।।

हे धनंजय ! मुझसे भिन्न इस जगत का परम कारण दूसरा कोई भी नहीं है। जैसे एक ही सूत्र में सभी मणि गूँथे जाते हैं, उसी प्रकार सभी धर्मों में मैं ही विराजता हूँ।'

सनातन धर्म यह विश्वास करता है कि जगत्कारण परमात्मा की इच्छा से ही इस सृष्टि के व्यवहार चलते हैं। इस सृष्टि का संचालक वे ही हैं। श्रीरामकृष्ण देव कहते हैं कि पेड़ की एक पत्ती भी भगवान की इच्छा के बिना नहीं हिलती। तो यहाँ यह स्पष्ट है कि ईश्वर के बिना इस जगत् का परम कारण अन्य कोई या अन्य कुछ हो नहीं सकता। हम विश्वास करते हैं कि सभी धर्म एक हैं। यह है सनातन धर्म जिसमें सभी धर्म एक हैं। यह सनातन धर्म है, जिसमें सभी धर्मों को आत्मसात् करने की शक्ति है। क्योंकि वह आत्मतत्त्व पर अधिष्ठित है। हम मानते हैं कि कीट-पतंग से लेकर आध्यात्मिक अनुभूतिसम्पन्न महापुरुष तक सभी में एक ही आत्मा विराजमान है। इसका ज्वलन्त दृष्टान्त हम श्रीमाँ सारदा देवी के जीवन में देखते हैं। एक दिन अमजद के खाना खाने के बाद जब श्रीमाँ उसके जूठे स्थान को साफ करने लगीं, तो उनकी भतीजी नलिनी बोल उठी, 'बुआ! आप ये क्या कर रही हो? आपकी जाति चली गयी। अब माँ ने जो उत्तर दिया वह बहुत ही मार्मिक है। माँ बोलीं, क्यों, जैसे शरत् मेरा बेटा है, वैसे ही अमजद भी मेरा बेटा है! अब देखिए, शरत् महाराज भगवान श्रीरामकृष्ण देव के अन्तरंग शिष्य हैं। वे एक ब्रह्मज्ञानी महापुरुष हैं और अमजद रहा एक चोर-डाकू। आवश्यकता होने पर किसी की हत्या करने में भी वह पीछे नहीं हटता था। लेकिन माँ की दृष्टि में दोनों एक हैं। यह माँ की अनुभूति है कि एक ही आत्मा सब में विराजमान है। इसलिए व्यवहार में भी उनका प्रेम सभी को समान मिलता है। जब अमजद कई महीनों बाद आता है, तो माँ उतनी ही आत्मीयता से उससे पूछती हैं, बाबा अमजद! बहुत दिन हुये, तुम दिखायी नहीं दिये? अमजद भी उतने ही प्रेम से कहता है – हाँ माँ! चोरी के मामले में पकड़ा गया था ...। यह है सनातन धर्म, जो हमें समदृष्टि प्रदान करता है और इस आत्मतत्त्व के कारण ही हमारी दृष्टि में सभी मत, सम्प्रदाय, पन्थ, धर्म एक हैं।

वन्दनीय राष्ट्रसन्त तुकड़ो जी महाराज ने अपने एक भजन में कहा है –

हर देश में तू, हर वेष में तू,
तेरे नाम अनेक, तू एक ही है।

तेरी रंग भूमि यह विश्व भरा,
हर खेल में मेल में तू ही तू है।।

ऐसा कोई स्थान नहीं, ऐसा कोई वेष नहीं, जिसमें भगवान नहीं है। यह विश्व परमात्मा की रंगभूमि है, लीला-स्थान है। यह चराचर विश्व परमात्मा से व्याप्त है। तो फिर हम किससे प्रेम करेंगे और किससे घृणा, किसकी निन्दा करेंगे और किसकी प्रशंसा? जो मुझे सम्मान से माला पहना रहा, उसमें भी वही, जो मेरा अपमान कर रहा, उसमें भी वही परमात्मा विराजित है। जो मुझे उपहार दे रहा उसमें भी वही और जो मुझसे छीन ले रहा, उसमें भी वही। सृष्टि के मूल में हैं, तो स्वयं भगवान ही। 'एकोऽहं बहु स्याम' – 'एक हूँ, अनेक हो जाऊँ'। तो यह जगत् स्वयं ईश्वर की ही इच्छा से सृष्ट है। इसकी धारणा करना है तो कठिन, परन्तु प्रयत्नपूर्वक अभ्यास के द्वारा, सतत इसका चिन्तन करते-करते, इस सत्य को हम समझ पायेंगे। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं, 'जैसा तुम सोचोगे, वैसा तुम बनोगे'। हमारी एक वैदिक प्रार्थना है, जो प्रत्येक हिन्दू प्रतिदिन करता है। हमें यहाँ याद रखना है कि हिन्दू धर्म ही सनातन धर्म है। हिन्दू और सनातन; इन दो शब्दों में भेद केवल इतना ही है कि एक है ऐतिहासिक शब्द और एक है नित्य स्थित शब्द। वह प्रार्थना है –

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत्।।

अर्थात् 'सभी सुखी हों, सभी स्वस्थ हों, सभी मंगल देखें, किसी को किसी भी प्रकार का कोई दुख न हो।' इस प्रकार सबका कल्याण चाहने से हमारी शुभवृत्ति होती है और हम अच्छे हो जाते हैं। हमारे भीतर की पाशवी वृत्तियाँ दूसरों की भलाई के सामने नष्टप्राय हो जाती हैं। सबके दुखों में दुखी होना, उनके सुखों में सुखी होना, दुख-संकट में सहायता करना, जिसको जहाँ जो आवश्यकता है, उसकी अपने क्षमतानुसार सहायता करना, यह चिन्तन और प्रयास ही सनातन धर्म है, जो हमारे अन्तर्निहित देवत्व का विकास करने में सहयोगी होगा। यह देवत्व ही हमारे धर्म-जीवन का स्तर बढ़ायेगा।

एक सम्प्रदाय में प्रतिदिन प्रात:कालीन प्रार्थना के बाद अन्त में सभी खड़े होकर गाते हैं –

तन मन धन से सदा सुखी हो भारत देश हमारा।
सभी धर्म और पंथ पक्ष को दिल से रहे पियारा।।
विजयी हो ! विजयी हो ! विजयी हो ! भारत देश हमारा !!

यह प्रार्थना भी सनातन धर्म पर आधारित है। इसमें भी कल्याण के साथ ही भेदभाव को मिटाकर आन्तरिक सच्चे प्रेम का संदेश दिया गया है। यह प्रार्थना सबमें सद्भाव, समभाव, समदृष्टि और बल प्रदान करती है। यह धर्म ही हमारा जीवन है। बचपन में रामायण, महाभारत एवं अन्य पौराणिक कहानियाँ सुनकर हमारे जीवन का प्रारम्भ होता है। जब हम बड़े होते हैं, तो हमारे कार्य-कलापों में यह धर्मभाव अभिव्यक्त होता है। मनुष्य के व्यक्तित्व में धर्म-भाव ही सबसे अधिक आकर्षित करता है। क्यों? क्योकि वह अपना स्वभाव है। इस प्रकार हमारा दैनन्दिन जीवन ही धर्ममय होता है। कर्मक्षेत्र में उचित-अनुचित कर्म की परख धर्म से ही होती है। यह धार्मिक जीवन जिन सत्यों पर आधारित है, उनकी अनुभूति आध्यात्मिक जीवन है और यह आध्यात्मिक अनुभूति ही मनुष्य जीवन का उद्देश्य है। यही है सनातन धर्म की नींव।

भगवान श्रीरामकृष्ण देव ने एक बार नरेन्द्रनाथ से पूछा, 'इस आध्यात्मिक उपलब्धि के बाद तू क्या करेगा?' उन्होंने उत्तर दिया – देहात्म-भाव लौटने पर शरीर-धारण के लिए आवश्यक कुछ ग्रहण कर फिर से समाधि में लीन हो जाया करूँगा।' तब श्रीरामकृष्ण देव ने तिरस्कार करते हुए कहा था – 'मैंने सोचा था कहाँ तू एक विशाल वट वृक्ष होगा और सब तेरी छाया में शान्ति पायेंगे। तू इतना स्वार्थी निकला कि केवल अपनी ही मुक्ति की सोचता है। वे नरेन्द्रनाथ जब स्वामी विवेकानन्द बने, तब कहते हैं, 'जब तक एक भी प्राणी अपनी मुक्ति से वंचित है, तब तक मेरी मुक्ति नहीं।' मनुष्य की सेवा, उसका उत्थान ही हमारा सर्वप्रथम कर्तव्य है। यदि हम मनुष्य के उत्थान के लिए कुछ भी प्रयत्न नहीं करेंगे, चाहे वह जिस किसी प्रकार का हो – शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक या आध्यात्मिक, तो हमारा मानव-जन्म व्यर्थ है। तब तो हम केवल दिखने में ही मनुष्य हैं, वास्तव में हैं तो पशु ही। श्रीमाँ सारदा यहाँ तक कहती हैं कि यदि तुम्हारे पास कुछ भी नहीं है, तो जगत-कल्याण के लिये भगवान का नाम-जप करो। यह भी एक बहुत बड़ी सेवा है। कहते हैं न – दुखी-दरिद्र, अस्वस्थ मानव की सेवा करने से मेवा मिलता है। यह शत-प्रतिशत सच बात है। नर ही साक्षात् नारायण है। इसलिये मनुष्य-सेवा ही ईश्वर-सेवा है। मनुष्य की सेवा से चित्तशुद्धि होती है और उसमें स्वयं भगवान के दर्शन होते हैं। लेकिन कब? जब यह सेवा पूर्ण रूप से नि:स्वार्थ होती है। जिस चित्त-शुद्धि के लिए साधक

को सालों तपस्या करनी पड़ती है, वह चित्तशुद्धि मानव-सेवा से स्वयं ही हो जाती है। यह युगधर्म है, जो स्वामीजी ने हमें जनता-जर्नादन की सेवा के द्वारा समझाया। उनका युग-मन्त्र है त्याग और सेवा। इसलिए उन्होंने रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन का ध्येय-वाक्य आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च' किया।

स्वामीजी कहते हैं, 'प्रत्येक जीव अव्यक्त ब्रह्म है।' तो इनकी सेवा के द्वारा हमारी जो उपासना होगी, उससे हम ब्रह्म को ही पायेंगे। तब कैसे कोई जाति-धर्म-पन्थ हमारी उपासना में विघ्न डाल सकते हैं? सनातन धर्म हमें यही सिखाता है कि हमारा सम्बन्ध केवल ब्रह्म से है। सभी हमारे हैं, हम सबके लिए हैं।

रघुपति राघव राजा राम पतित पावन सीता राम।
ईश्वर अल्ला तेरे नाम, सबको सन्मति दे भगवान।

स्वामी प्रेमानन्द जी महाराज की जगन्नाथपुरी में निवासकालीन एक घटना है। एक दिन महाराज ने देखा, मन्दिर के सामने ईसाई-प्रचारक भगवान यिशु की महिमा गा रहे हैं। वे मण्डलाकार लोगों से घिरे हुये हैं। सहसा उनके संस्कार जाग उठे और उसमें बाधा डालने हेतु महाराज उन लोगों के पास में खड़े होकर उच्च स्वर में चिल्लाने लगे, हरिबोल! हरिबोल! ईसाई प्रचारकों के पास जो शत-शत नर-नारी खड़े थे, वे भी महाराज के साथ हरिबोल, हरिबोल, हरिबोल बोलने लगे। पूरा परिसर हरिबोल के निनाद से गूँज उठा। इससे वह सभा भंग हो गयी। मन्दिर के पण्डाओं ने प्रेमानन्द जी महाराज को धन्यवाद देते हुए कहा, डर के कारण इतने दिनों से हम कुछ भी नहीं कर पा रहे थे। परन्तु सर्वधर्मस्वरूप ठाकुर रात में महाराज को सपने में दर्शन देकर बोले, 'अरे! उनकी सभा तूने क्यों भंग कर दी? वे लोग (ईसाई प्रचारक) तो मेरा ही नाम, मेरी ही वाणी का प्रचार कर रहे थे। कल सुबह उठते ही जाकर उनसे क्षमा याचना करना।' प्रेमानन्दजी महाराज ने वैसा ही किया। संकीर्णता का सनातन धर्म में स्थान नहीं है। सत्यानुभूति ही सनातन धर्म की परख है। सभी धर्मों में एक ही भगवान की उपासना होती है, यह सिद्धान्त उन्होंने सिद्ध करके दिखलाया। ऐसा भव्य, दिव्य, उदार व्यापक भाव जहाँ कहीं हमें दिखायी पड़े, समझना होगा, यही सनातन धर्म है।

जगत्कारण परमात्मा उस सृष्टि में ओतप्रोत भरे हैं, यह अनुभूति ही हमारे जीवन का एकमात्र लक्ष्य है। केवल तभी हम सबके प्रति सर्वतोभावेन सहिष्णु हो पायेंगे। एक ही ईश्वर इस संसार में उन्हीं की संतानों द्वारा अनेकों नामों से पुकारे जा रहे हैं। जब हम अपना-पराया का भेद भूलकर, द्वेष-द्वन्द्वों से परे हो जायेंगे, तब यह विश्व अपना ही परिवार है, इस आनन्द से हृदय प्रफुल्लित हो जायेगा। श्रीदुर्गा-पूजा के उपलक्ष्य में एक बार श्रीमाँ सारदा देवी ने एक ब्रह्मचारी से मामा (श्रीमाँ के भाई) के बच्चों के लिए नये कपड़े लाने को कहा। उन दिनों स्वदेशी कपड़ों एवं चीजों पर सबकी दृष्टि केन्द्रित थी। इसलिए ब्रह्मचारी सब स्वदेशी कपड़े ले आये। अब बच्चों को ये कपड़े मोटे होने के कारण पसन्द नहीं आये। उसमें जो लड़कियाँ थीं, उन्होंने मोटे कपड़े लौटाकर नरम कपड़े लाने को कहा। इस पर ब्रह्मचारी ने थोड़ा नाराज होकर कहा, 'वह सब तो विदेशी सामग्री है, उसको क्यों लाना? तब माँ थोड़ा हँसकर बोलीं, ''बाबा! वे (विदेशी लोग) भी तो मेरी ही सन्तान हैं।''

एक बार इस्टर के उत्सव में भगिनी निवेदिता से अंग्रेजी धर्म संगीत सुनकर माँ समाधि में मग्न हो गयी थीं। यह है वसुधैव कुटुम्बकम् की साक्षात् अनुभूति। हम सब उनकी संतान होने के कारण हमारा स्वरूप भी दिव्य है। श्वेताश्वतर ऋषि अपनी ईश्वरोपलब्धि के उपरान्त सम्पूर्ण विश्व के समग्र मानव जाति को 'अमृतस्य पुत्राः' कहकर पुकारते हैं। ब्राह्मण से चाण्डाल, मेहतर तक, पण्डित से मूर्ख, भिक्षुक, हत्यारे सबको वे अमृत की संतान कह रहे हैं। उनकी दृष्टि में अब कोई भेद ही नहीं बचा है। यह है सनातन धर्मोपलब्धि। स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज कहते हैं, क्या जब अजान होती है, तब तुम्हें अपनी प्रार्थना की याद आती है?

वन्दनीय राष्ट्रीय सन्त तुकड़ो जी महाराज जब नागपुर के रामकृष्ण मठ में गये थे, तब वहाँ श्रीरामकृष्ण के मन्दिर को देखकर उन्हें जो अनुभूति हुई थी, उसको उन्होंने अपने भजन में इस प्रकार से व्यक्त किया था –

सबके लिए खुला है मन्दिर ये है हमारा।
मतभेद को भुलाता, मंदिर ये है हमारा।। सबके ..
आओ सभी ही पन्थी, आओ सभी ही धर्मी।
देशी-विदेशियों का, मन्दिर ये है हमारा।।१।।
मानव का धर्म क्या है मिलती है राह जिसमें।
चाहता भला सभी का, मन्दिर ये है हमारा।।२।।

भगवान श्रीरामकृष्ण देव कहते हैं, सभी धर्म आयेंगे और जायेंगे, लेकिन हिन्दू धर्म सर्वदा रहेगा। क्योंकि हिन्दू धर्म सनातन धर्म है। ○○○

युवाओं के लिए कठोपनिषद् का दिव्य उपहार

स्वामी गुणदानन्द, रामकृष्ण मठ, नागपुर

मनुष्य के जीवन में कुछ ऐसे क्षण आते हैं, जो भीतर की सुप्त चेतना को झंकृत कर देते हैं। वे आत्मा के दर्पण पर पड़ी धूल हटाकर जीवन को नूतन दिशा प्रदान करते हैं। कठोपनिषद् (१.३.१४) का यह दिव्य वाक्य – 'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत' अत्यन्त ही प्रभावकारी, उद्बोधक तथा यथार्थ जीवनोपयोगी है। विशेषत: आज का युवावर्ग, जो संघर्ष एवं भ्रम के द्वन्द्व में जी रहा है, उसके लिए यह वाक्य एक प्रकाशस्तम्भ के समान है।

'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत' इसका सरल व सरस भावार्थ – उठो! जागो! श्रेष्ठ जनों के समीप जाओ। और उनसे यथार्थ ज्ञान प्राप्त करो।

(क) '**उत्तिष्ठत**' – यह केवल उठने की क्रिया नहीं, बल्कि आत्म-जागरण और कर्म-पथ की ओर बढ़ने का आह्वान है। आज का युवा तकनीकी रूप से सक्षम होते हुए भी आलस्य, आत्म-संशय और डिजिटल प्रमाद में डूबा है। वह जागने की नहीं, प्रतीक्षा की वृत्ति में है – मानो कोई आएगा और उसके जीवन का दीप प्रज्वलित करेगा। यह 'उठना' केवल शारीरिक स्तर या बिस्तर से नहीं, बल्कि अपने भय, संकोच, हिचकिचाहट, तथा भ्रम से ऊपर उठकर नि:शंक आत्मिक, मानसिक एवं नैतिक स्तर से होकर कर्मपथ की ओर अग्रसर होना है। यह वेदवाक्य उसे चेताता है – यदि तू स्वयं नहीं उठा, तो समय चुपचाप बीत जाएगा और तू केवल एक अदृश्य सम्भाव्यता बनकर रह जाएगा। 'उत्तिष्ठत' का मर्म यही है। यह निज चेतना की सुप्त ज्वाला को पहचानकर उसे क्रियाशीलता में परिणत करने की पुकार है। यह मंत्र युवक से कहता है – हे युवा! तू केवल परीक्षा देने वाला छात्र नहीं, तू राष्ट्र की आत्मा है। आत्महीनता की भूमि से उठ; लक्ष्य तेरी प्रतीक्षा में नहीं, तू ही उसके योग्य बन।

'उत्तिष्ठत' के इस प्रेरणास्पद वेदवाक्य का मूर्तिमान स्वरूप है झारखण्ड की रंजिता कुमारी, जिसने अपने ही आँगन को विद्यालय बनाकर 'मिट्टी की पाठशाला' आरम्भ की। स्वयं शिक्षा से वंचित रहकर भी उसने आत्मप्रयत्न

से विद्या अर्जित की और अब सैकड़ों बच्चों के जीवन में प्रकाश भर रही है।

(ख) '**जाग्रत**' – यह केवल आँखें खोलने की नहीं, आत्मचेतना, विवेक और उद्देश्य की जागरूकता की पुकार है। आज का युवा सूचनाओं से घिरा है, परन्तु दिशाहीन है – उसे टेक्नॉलॉजी तो आती है, स्मार्टफ़ोन चलाना जानता है, पर उसमें आत्मविवेक की समझ कम होती जा रही है, वह स्वयं के भीतर के पुरुषार्थ को नहीं पहचानता। 'जाग्रत' का आह्वान है: अपने विचारों, समय और संगति के प्रति सजग हो जाओ। यह जीवन केवल मनोरंजन या सुविधा के लिए नहीं, सृजन, सेवा और आत्मविकास के लिए मिला है। डिग्रियों से नहीं, बल्कि आत्मनियंत्रण, परिश्रम और स्पष्ट दृष्टि से जीवन बनता है। आज का युवा तभी 'जाग्रत' कहलाएगा, जब वह समझे कि उसका हर निर्णय, हर क्षण, उसके और राष्ट्र के भविष्य को आकार दे रहा है। अत: यह शब्द उसे जाग्रत करता है – 'हे युवा! तू क्या सचमुच जाग चुका है? क्या तुझे ज्ञात है कि तेरा प्रत्येक निर्णय तेरा भविष्य गढ़ रहा है? क्या तू अपने भीतर की प्रतिभा, सामर्थ्य और उत्तरदायित्व को पहचानता है?' जीवन की दिशा, लक्ष्य की स्पष्टता, समाज के प्रति दायित्वबोध – यही जागरण की त्रयी है।

ओडिशा के डॉ. अच्युत सामंत ने निर्धन आदिवासी ग्राम से उठकर Kalinga Institute of Industrial Technology

व Kalinga Institute of Social Sciences संस्थाओं की स्थापना की, जो हजारों वंचितों को नि:शुल्क शिक्षा प्रदान कर रही हैं – उनका जीवन बताता है कि जाग्रत वही है, जो समाज के उत्थान के लिए कार्य करे।

डॉ. अच्युत सामंत

(ग) '**प्राप्य वरान्**' – 'प्राप्य वरान्' का भाव है – ऐसे मार्गदर्शकों का संग चुनना जिन्होंने जीवन को अनुभव से जाना है, न कि केवल पढ़ा है। आज के युवा गूगल और यूट्यूब से भरपूर जानकारी तो प्राप्त कर लेते हैं, परन्तु जीवन की दिशा प्राप्त नहीं कर पाते, तब यह मंत्र कहता है – उन अनुभवी लोगों के पास जाओ, जो तुम्हें लाइक्स नहीं, सच्ची सलाह दें। टेक्नोलॉजी से सूचना मिलती है, किन्तु जीवनदृष्टि ऐसे 'वरों' अर्थात् योग्य एवं श्रेष्ठ व्यक्तित्व के मार्गदर्शन से ही मिलती है, जो प्रशंसा नहीं, अपितु परामर्श प्रदान करें; जो चकाचौंध नहीं, अपितु चरित्र की ओर उन्मुख करें। तुम्हारे चारों ओर ऐसे मार्गदर्शक रूपी दीपक उपस्थित हैं – कभी माता-पिता के रूप में, कभी शिक्षक के रूप में, तो कभी अनुभवी बन्धु अथवा स्नेही वरिष्ठ के रूप में। इनसे विमुख होकर यदि तुम केवल स्वमेधापरक निर्णयों पर आश्रित रहोगे, तो दिशा-भ्रम की आशंका सदैव बनी रहेगी। 'प्राप्य वरान्' का तात्पर्य है – उन व्यक्तियों का संग प्राप्त करना, जो मूल्यों पर आधारित निर्णयों का पथ दिखाते हैं; जो जीवन के उतार-चढ़ाव में समत्व धारण करने की कला सिखाते हैं।

एक विज्ञान-साधक, एक सच्चे 'वर' (श्रेष्ठ मार्गदर्शक) पूर्व निदेशक, IIT दिल्ली और वर्तमान में BITS पिलानी के ग्रुप कुलपति और IIT बॉम्बे के प्रोफेसर, डॉ. वी. रामगोपाल राव ग्रामीण पृष्ठभूमि से आनेवाले एक ऐसे भारतीय वैज्ञानिक हैं, जिन्होंने Nano electronics के क्षेत्र में भारत को वैश्विक मानचित्र पर खड़ा किया। वे सोशल मीडिया पर भी युवाओं को प्रेरित करते हैं, लेकिन दिखावे के लिए नहीं, अपितु दिशा-सम्पन्न और मूल्यपरक मार्गदर्शन के लिए। वे छात्रों को करियर नहीं, चरित्र गढ़ने की शिक्षा देते हैं।

(घ) '**निबोधत**' – अर्थात् ज्ञान को केवल सुनो नहीं, बल्कि उसे हृदयंगम करो, मनन करो और जीवन में उतारो। यह मंत्र श्रवण से आचरण तक की यात्रा का संकेत है। आज सूचनाएँ सर्वत्र उपलब्ध हैं, पर जीवन में उनका प्रकाश नहीं झलकता, क्योंकि उन्हें केवल सुना गया है, आत्मसात् नहीं किया गया। 'निबोधत' युवक को स्मरण कराता है कि ज्ञान तभी सार्थक है, जब वह तुम्हारे विचारों, व्यवहार और निर्णयों में प्रकट हो। यह केवल श्रोतावस्था नहीं, आत्मोन्नति की प्रक्रिया है। 'निबोधत' कहता है – तुम्हारे अध्ययन और पाठ्यक्रम का मूल्य तब है, जब वे तुम्हारी वाणी में सत्यता, कर्म में मर्यादा और जीवन में सदाचार के रूप में झलकें। केवल सूचना का संग्रहण युवक को ज्ञानी नहीं बनाता। आज के युवाओं को चाहिए कि वे सुनें, गहराई से सोचें, आत्मावलोकन करें और जो सीखा है, उसे अपने जीवन के हर स्तर पर अभिव्यक्त करें। 'निबोधत' केवल एक शब्द नहीं, यह चेतना का दीप है, जो आत्मविकास की ओर ले जाता है।

पद्मश्री श्री चिन्दू भईया पटेल (मध्य प्रदेश) एक आदिवासी शिक्षक हैं, जिन्होंने न तो उच्च डिग्रियाँ प्राप्त कीं, न ही व्याख्यान दिए, परन्तु निबोधत का भाव अपने सम्पूर्ण जीवन में आत्मसात् किया। उन्होंने बस्तर के एक सुदूर आदिवासी अंचल में शिक्षा के महत्त्व को समझा और जो कुछ भी सीखा, उसे बच्चों तक पहुँचाने के लिए जंगल के रास्तों पर पैदल चलकर, मिट्टी की दीवारों पर अक्षर लिखकर और पत्तों पर चित्र बनाकर शिक्षा दी।

उपसंहार : 'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत' युवाओं को कर्तव्यनिष्ठ, विवेकशील, आत्म-चेतना से पूर्ण जीवन जीने और समाज के प्रति सजग नागरिक बनने की प्रेरणा देता है। अत: उठो, क्योंकि समय नहीं रूकेगा, आलस्य, भय, असमंजस को त्याग कर उठो; जागो, क्योंकि तुम्हारे भीतर अद्भुत सामर्थ्य है, लक्ष्य, समय व कर्तव्य के प्रति सजग हो जाओ; योग्य एवं श्रेष्ठ मार्गदर्शकों से सम्पर्क स्थापित करो;, ज्ञान को केवल सुनो मत, जीवन में उतारो। यह युवाओं को सन्देश देता है – तू केवल उपभोक्ता नहीं, निर्माता है; भीड़ नहीं, नेतृत्व है; सम्भावना नहीं, दिशा है। अब और देर मत करो, दिशाहीनता से बाहर निकलो। ○○○

संसार की असारता को समझिए

स्वामी सत्यरूपानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ, प्रयागराज के अध्यक्ष और रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के सचिव थे।

संसार की असारता क्या है? 'असारता' से मेरा तात्पर्य 'यह व्यर्थ है, नष्ट है, मिथ्या है' आदि ऐसा नहीं है। असारता का क्या तात्पर्य है? वस्तु का सार हमने निकाल लिया और बचे असार को फेंक दिया। जैसे हम गन्ना चूसते हैं। गन्ने का सार उसका रस है। हमने गन्ना चूसा, गन्ना चूसने के बाद जो बचता है, उसको मुँह में नहीं रखते हैं। उसको थूक देते हैं, फेंक देते हैं। गन्ने का रस बाजार में बिकता है। गन्ने को पेर कर रस निकालते हैं और उसके बचे अंश असार गुल्ले को फेंक देते हैं। संसार इसी प्रकार असार है। विचार करके देखिए। संसार का उपयोग करने के लिए कहीं कोई निषेध नहीं है। हमारे शास्त्रों में कहीं नहीं कहा गया है कि संसार का उपयोग मत करो। किन्तु भोग करना निषेध है।

संसार की असारता को समझेंगे, तो क्या लाभ होगा? जैसे मनुष्य-देह की उच्चता को हमने समझा, तो देह का अपव्यय बचा। उसी प्रकार संसार की असारता को जब हम समझ लेंगे, तो परिग्रह और अशान्ति; इन दो चीजों से हम बच जायेंगे। संसार की असारता का तात्पर्य है, जो वस्तु निरर्थक है, व्यर्थ है, जिसका जीवन में कोई प्रयोजन नहीं है, उसको छोड़ दें। वस्तु के उपयोग के बाद उसको त्याग दें।

ये असारता हमको कैसे दिखेगी? जब हम संसार को ध्यान से देखेंगे। 'संसार' शब्द का अर्थ ही, 'सम्यक् सरति इति संसारः।' जो हमेशा चल रहा है, बदल रहा है, उसका नाम संसार है। इस संसार में किसी स्थायी वस्तु की आशा रखना एक बहुत बड़ी भूल है। संसार ऐसा ही है। यह बदलता रहेगा, इसमें परिवर्तन होता रहेगा। निरन्तर परिवर्तन ही संसार का गुण है, संसार का लक्षण है।

जब हमने इस संसार को ऐसा समझ लिया कि यहाँ तो सब कुछ बदलने वाला है, आज है, कल नहीं रहेगा। इस सत्य को जब हम स्वीकार कर लेंगे, तो जो परिवर्तन जीवन में आयेंगे, वे हमें कष्ट नहीं देंगे। कैसे कष्ट नहीं देंगे? हमको पता है कि आज ऐसा है, कल नहीं रहेगा। आपने अपने बगीचे में बहुत सुन्दर कई प्रकार के चम्पा, मोंगरा, रातरानी के फूल लगा रखे हैं। उनमें से बहुत सुगन्ध आ रही है। आप सुगन्ध का सुबह-शाम आनन्द ले रहे हैं। सारे दिन धूप लगी, शाम को आप जाते हैं, तो सुगन्ध कम लगी। दूसरे दिन, तीसरे दिन आपने देखा कि सुगन्ध समाप्त हो गयी। फूल मुरझा गये। आपको सुगन्ध नहीं मिल रही है। किन्तु अगर पहले दिन ही आपको इसका ज्ञान रहे कि अभी यह जो सुगन्ध मिल रही है, वह बाद में नहीं मिलेगी, तो आपको दुख नहीं होगा। ठीक है, आप घण्टे-दो घण्टे इसका सुख अवश्य ले लें, पर ये निश्चित जानें कि ये सुगन्ध समाप्त हो जानेवाली है, इसीलिए आपको उसका दुख नहीं होना चाहिए।

यदि यह भाव हमारा संसार के प्रति रहे, तो संसार का व्यवहार तो होगा, पर संसार के छूटने से दुख नहीं होगा। क्योंकि उसकी प्रकृति है। जैसे फूल मुरझा जायेगा, उसी प्रकार जिन वस्तुओं का संसार में हम उपयोग करते हैं, जिन व्यक्तियों से मिलते हैं, जिन स्थानों में जाते हैं, जो घटनाएँ घटती हैं, वे सभी ऐसी हैं कि आज हैं, तो कल नहीं रहेंगी। वे सदा बदलती रहेंगी। इसलिए उनके प्रति आसक्ति नहीं रखनी चाहिए। ये भी प्रतिदिन का काम है। प्रत्येक साधक-साधिका को संसार की असारता का विचार करना चाहिए कि संसार आज हमारे साथ है और कल हमारे साथ नहीं रहनेवाला है।

शेष भाग पृष्ठ ५११ पर

प्रश्नोपनिषद् (६५)

श्रीशंकराचार्य

(सनातन वैदिक धर्म के ज्ञानकाण्ड को उपनिषद् कहते हैं। हजारों वर्ष पूर्व भारत में जीव-जगत् तथा उससे सम्बद्ध गम्भीर विषयों पर प्रश्न उठाकर उनकी जो मीमांसा की गयी थी, ये उन्हीं के संकलन हैं। वैदिक धर्म की पुन: स्थापना हेतु आचार्य ने इन पर सहज-सरस भाष्य लिखकर अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था। प्रश्नोपनिषद् पर लिखे उनके भाष्य का हिन्दी अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी द्वारा किया गया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' के पाठकों हेतु प्रस्तुत किया जा रहा है। –सं.)

भाष्य – न चेद्-विज्ञायेत पुरुषो मृत्यु-निमित्तां व्यथाम् आपन्ना दु:खिन एव यूयं स्थ। अत: तत्-मा-भूत्-युष्माकम् इति अभिप्राय:।।६/६।।

भाष्यार्थ – यदि तुमने 'पुरुष' को नहीं जाना, तो तुम लोग मृत्यु के कारण होनेवाली पीड़ा को पाकर दुखी ही होओगे। अत: तात्पर्य यह है कि तुम लोगों को वह पीड़ा न प्राप्त हो।।६।।

तान्होवाचैतावदेवाहमेतत्परं ब्रह्म वेद।
नात: परमस्तीति।।६/७।।

अन्वयार्थ – तान् ह (शिष्य-रूप में आए उन छह ऋषियों से) उवाच (महर्षि पिप्पलाद ने कहा) – अहम् (मैं) एतत् (इस) परम् ब्रह्म (परब्रह्म के विषय में), एतावद् एव (इतना ही), वेद (जानता हूँ), अत: परम् (इससे अधिक), न अस्ति (कुछ ज्ञातव्य नहीं है), इति (इस प्रकार उपदेश पूर्ण हुआ)।।७।।

भावार्थ – शिष्यों के रूप में आए हुए उन छह ऋषियों से महर्षि पिप्पलाद ने कहा – मैं इस परब्रह्म के विषय में इतना ही जानता हूँ। इससे अधिक कुछ भी ज्ञातव्य नहीं है। इस प्रकार उपदेश पूर्ण हुआ।

भाष्य – तान् एवम् अनुशिष्य शिष्यान् तान् होवाच पिप्पलाद: किल-एतावद्-एव वेद्यं परं ब्रह्म वेद विजानामि अहम् एतत्। न अत: अस्मात्-परम्-अस्ति प्रकृष्टतरं वेदितव्यम् इति – एवम् उक्तवान् शिष्याणाम् अविदित-शेष-अस्ति-तु-आशङ्का-निवृत्तये कृतार्थ-बुद्धि-जननार्थं च।।७।।

भाष्यार्थ – उन शिष्यों को इस प्रकार उपदेश देने के बाद, महर्षि पिप्पलाद उनसे बोले – उस ज्ञातव्य परब्रह्म को मैं इतना ही जानता हूँ। इससे ऊपर अन्य कुछ भी ज्ञातव्य तत्त्व नहीं है। शिष्यों को आशंका हो सकती थी कि कुछ अज्ञात बचा हुआ होगा, उनकी शंका-निवृत्ति हेतु और उनमें धन्यता का बोध उत्पन्न करने के लिए पिप्पलाद मुनि ने ऐसा कहा।

ते तमर्चयन्तस्त्वं हि न: पिता योऽस्माकमविद्याया: परं पारं तारयसीति नम: परमऋषिभ्यो नम: परम-ऋषिभ्य:।।६/८।।

अन्वयार्थ – ते (तब वे छह ऋषि), तम् (महर्षि पिप्पलाद की) अर्चयन्त: (पूजा-अर्चना करते हुए) (बोले –), त्वम् हि (आप ही) न: (हमारे) पिता (पिता हैं), य: अस्माकम् (जिन्होंने हमें), अविद्याया: (अविद्या से) परम् (पूर्णतया) पारम् तारयसि (पार कर दिया), इति (ऐसा कहा और बोले –) नम: परमऋषिभ्य: (परम ऋषियों को नमस्कार है), नम: परमऋषिभ्य: (परम ऋषियों को नमस्कार है) ।।८।।

भावार्थ – तब उन (छह) शिष्यों ने उन महर्षि पिप्पलाद की पूजा-अर्चना करते हुए कहा कि आप ही हमारे पिता हैं, क्योंकि आपने ही हमें अविद्या (रूपी सागर) से पूर्णत: उस पार पहुँचाया है। उन परम ऋषियों (की परम्परा) को हमारा नमस्कार है, नमस्कार है।।८।।

भाष्य – तत: ते शिष्या: गुरुणा अनुशिष्टा: तं गुरुं कृतार्था: सन्त: विद्या-निष्क्रयम् अपश्यन्त: किं कृतवन्त इति उच्यते – अर्चयन्त: पूजयन्त: पादयो: पुष्पाञ्जलि-प्रकिरणेन प्रणिपातेन च शिरसा। किम् ऊचु: इति आह – ''त्वं हि न: अस्माकं पिता ब्रह्म-शरीरस्य विद्यया जनयितृत्वात् नित्यस्य अजर-अमरस्य अभयस्य।''

भाष्यार्थ – तब, गुरु से उपदेश पाकर कृतार्थ हुए उन शिष्यों ने, दान की गई उस विद्या की अमूल्यता को देखते हुए क्या किया, सो बतलाते हैं – उन लोगों ने (महर्षि के) चरणों में पुष्पांजलि प्रदानपूर्वक पूजा करके, साष्टांग प्रणाम किया; और क्या कहा, यह बताते हैं – ''विद्यादान के द्वारा

नित्य, अजर, अमर तथा अभय ब्रह्म-शरीर के जन्मदाता होने के कारण आप हमारे (पारमार्थिक) पिता हैं।''

भाष्य – य: त्वम् एव अस्माकम्-अविद्याया विपरीत-ज्ञानात् जन्म-जरा-मरण-रोग-दु:ख-आदि-ग्राहाद्-अपाराद्–अविद्या-महोदधेः विद्या-प्लवेन परम्-अपुनरावृत्ति-लक्षणं मोक्ष-आख्यं महोदधेः इव पारं तारयसि अस्मान् इति अतः पितृत्वं तव-अस्मान् प्रत्युपपन्नम् इतरस्मात्।

भाष्यार्थ – अविद्या-रूपी महासमुद्र जो जन्म, वार्धक्य, मृत्यु, रोग तथा दु:ख आदि ग्राहों से युक्त है और इस कारण जिसे पार करना कठिन है; चूँकि आपने ही हमें विद्या-रूपी नौका के द्वारा, इस अविद्या अर्थात् विपरीत-ज्ञान-रूपी महासागर से ले जाकर मोक्ष नामक उस दूसरे छोर पर पहुँचा दिया है, जहाँ पुनर्जन्म की पूर्णत: निवृत्ति हो जाती है; अत: हमारे लिये आपका पितृत्व अन्य जागतिक पितृत्व की अपेक्षा कहीं अधिक सार्थक है।

भाष्य – इतरः अपि हि पिता शरीरमात्रं जनयति। तथापि स प्रपूज्यतमो लोके किमु वक्तव्यम् आत्यन्तिक-अभयदातुः इति अभिप्रायः।

भाष्यार्थ – तात्पर्य यह है कि दूसरे पिता तो शरीर-मात्र को ही जन्म देते हैं, तथापि वे इस संसार में परम पूजनीय माने जाते हैं; तो फिर 'परम-अभय' प्रदान करनेवाले की पूज्यता के विषय में तो कहना ही क्या!

भाष्य – नमः परम-ऋषिभ्यो ब्रह्मविद्या-सम्प्रदाय-कर्तृभ्यो नमः परम-ऋषिभ्यः इति द्विर्वचनम् आदरार्थम्।।६/८।।

भाष्यार्थ – ब्रह्मविद्या-सम्प्रदाय के प्रवर्तक परम-ऋषियों को नमस्कार है, परम-ऋषियों को नमस्कार है। यहाँ दो बार कथन आदर प्रदर्शन हेतु है।।६/८।।

।। इति षष्ठः प्रश्नः ।।

इति श्रीमत्परमहंस-परिव्राजकाचार्यस्य श्रीगोविन्द-भगवत्-पूज्यपाद-शिष्यस्य श्रीशंकरभगवतः कृतौ प्रश्नोपनिषद्-भाष्यं समाप्तम्।

(समाप्तम्)

पृष्ठ ५०९ का शेष भाग

इस असारता का हम विचार करेंगे, तो क्या लाभ होगा? लाभ यह होगा कि हमारा मन सदैव उसको छोड़ने को प्रस्तुत रहेगा और उसके छूटने का हमको कोई कष्ट नहीं होगा। कोई चीज हमसे कोई छुड़ा ले, तो हमको दुख होता है। आपके हाथ की घड़ी कोई जबरदस्ती आपसे छुड़ा ले, तो बड़ा दुख होगा। मुझे भी दुख होगा। किन्तु यदि सब समय मैं प्रस्तुत हूँ कि ये घड़ी तो मुझे छोड़ देनी है, मेरा प्रयोजन हो गया, मेरा काम नहीं है, तो मुझे दुख नहीं होगा। यह संसार अवश्य छूटेगा। किसी भी प्रकार हम इसको पकड़ कर नहीं रख सकते, चाहे जितना प्रयत्न करें। यह देह, जो सबसे अधिक निकट है, सबसे प्रिय है, वह भी जब मृत्यु होगी, तो हमेशा के लिए छूट जायेगी।

आप डॉक्टरों से पूछिये, चिकित्साशास्त्रियों से पूछिये, तो वे यह बताते हैं कि सात वर्षों में हमारी देह के समस्त सेल्स बदल जाते हैं, सारी चीजें बदल जाती हैं। जो देह सात वर्ष पहले थी, वह अब नहीं है, पुरानी हो गयी है। नौ बजे इस शिविर का कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ, आप-हम-सब अब मृत्यु के पचास मिनट निकट पहुँच गये। सोचकर देखिए, यह इतना बड़ा सत्य है और माया ऐसी है कि इसको ही भूल जाते हैं।

जन्मदिन मनाना चाहिए। यह अच्छी बात है। सब लोग मनाते हैं। मैं यह नहीं कहता कि नहीं मनाना चाहिए। बच्चों का जन्मदिन तो अवश्य मनाइये। पर जब अपनी वर्षगाँठ आये, तो याद रखिये कि मृत्यु के एक साल और निकट आ गये। अगर हमें सत्तर साल जीना था और अब चौंसठ साल के हो गये, तो समझ लेना चाहिए कि छः साल और बाकी रह गये। तो साधक-साधिका को स्मरण रखना चाहिए कि यह देह छूटेगी। इसको पकड़कर रखने का प्रयत्न न करें। इसका उपयोग कर लें। जैसे अभी इस साल का, दरी का, कुर्सी का आप-हम उपयोग कर रहे हैं। उपयोग में दोष नहीं है। तो इसका उपयोग कर लें, इसमें आसक्त न हों। कार्यक्रम समाप्त होगा, आप चले जायेंगे। किन्तु आपके मन में यह बात नहीं आयेगी कि आश्रम का हॉल, दरी, कुर्सी हमारी है। इसी प्रकार संसार का उपयोग कर लीजिये, आसक्त मत होइये। संसार की असारता का विचार करने से यह लाभ होगा। ○○○

श्रीरामकृष्ण-गीता (५२)

(एकादश अध्याय / ११)

स्वामी पूर्णानन्द, बेलूड़ मठ

उत्तमोभक्तः

श्रीरामकृष्ण उवाच

वत्सराणां सहस्राणि नीरमध्ये निरन्तरम्।
संस्थितेऽपि शिलाखण्डे तस्मिन्न प्रविशेज्जलम्।।१।।

– श्रीरामकृष्ण ने कहा – हजारों वर्षों तक जल में पत्थर के पड़े रहने पर भी उसमें जल प्रवेश नहीं करता।

मृदा तु वारिसंस्पर्शाद् द्रागेव विद्रुतो भवेत्।
मनोऽप्रत्ययिनां तद्वदल्पेनापि विचाल्यते।।२।।

– किन्तु मिट्टी में जल का स्पर्श होने से ही, वह गल जाती है। वैसे ही अविश्वासी व्यक्तियों का मन थोड़े से ही में विचलित हो जाता है।

श्रद्दधानाश्च भक्ताश्च सहस्रेषु विपत्स्वपि।
नैराश्यं नोपगच्छन्ति सदाप्सूपलखण्डवत्।।३।।

– जो विश्वासी और भक्त हैं, वे हजारों संकटों में भी पत्थर में जल प्रवेश नहीं करने जैसा, निराश नहीं होते।।३।।

अतीव परितुष्टः सन् प्रह्लादेन स्तुतैः स्तवैः।
वरान् कान् याचसे तात भगवांस्तमुवाच ह।।४।।

– प्रह्लाद की स्तुति से अत्यन्त सन्तुष्ट होकर भगवान ने उनसे कहा – 'वत्स ! क्या वर माँगते हो?

प्रह्लादस्तं तदावोचत् क्षमस्व तान् जनान् प्रभो।
इहाविवेकिनो ये मे कष्टक्लेश-प्रदायिनः।।५।।

– प्रह्लाद ने उनसे कहा – हे प्रभो ! जिन अज्ञानियों ने मुझे दुख-कष्ट प्रदान किया है, उन लोगों को आप क्षमा कर दीजिये।

भवेद्वै निग्रहस्तेषां तवैव निग्रहो विभो।
यतः सर्वेषु भूतेषु त्वमेव विद्यसे स्वयम्।।६।।

– हे विभो ! उन्हें सजा देने से आपको ही कष्ट सहन करना पड़ेगा, क्योंकि आप तो सभी प्राणियों में विद्यमान हैं।

श्रीमहाराज उवाच

केशवं द्रष्टुमाकांक्ष्य समीपं भक्त-पुंगवम्।
स इयेष भृशं गन्तुं श्रीरामकृष्ण एकदा।।७।।

श्रीमहाराज ने कहा – एक दिन भक्त प्रवर केशवचन्द्र को श्रीरामकृष्ण देव को देखने की अत्यन्त इच्छा हुई।

जयगोपालसेनस्य बिल्वगेहस्थकानने।
ब्राह्मभक्तैः सहैवासीन्महात्मा केशवस्तदा।।८।।

– उस समय केशवचन्द्र ब्राह्मभक्तों के साथ जयगोपाल सेन के बेलघरिया के उद्यान में निवास कर रहे थे।

अथ शकटमारुह्य तस्मिन्नुद्यानमन्दिरे।
उपतस्थो स्वयं तत्र हृदयेन समं प्रभुः।।९।।

– उसके बाद श्रीरामकृष्ण देव हृदय मुखर्जी को साथ में लेकर गाड़ी से उसी बेलघरिया के उद्यान में उपस्थित हुये।

केशवस्तु तदानीं स ब्राह्मभक्त–समन्वितः।
आसीत्तत्रस्थकासारं स्नानार्थं गमनोद्यतः।।१०।।

– तब केशव बाबू ब्राह्मभक्तों के साथ तालाब में स्नान करने जा रहे थे।

सन्दृश्य तदवस्थं तं प्रहसन्नेव केशवम्।
लांगुलः स्खलितोऽस्येति स भगवानभाषत।।११।।

– उनको उस अवस्था में देखकर भगवान श्रीरामकृष्ण देव ने सहास्य कहा – 'इनकी पूँछ झड़ गयी है।

जहसुर्ब्राह्मभक्तास्ते श्रुत्वेदं वचनं प्रभोः।
मा हसिष्ठ बभाषे तान् केशवः परिभाषणम्।।१२।।

– श्रीरामकृष्ण की इस बात को सुनकर सभी ब्राह्मभक्त हँसने लगे। केशवचन्द्र ने उन्हें डाँटते हुए कहा – "तुम लोग हँसो मत। इन्होंने जो कहा है, इसका गहन अर्थ है।

तिष्ठन्ति बालशालूरा अप्सु यावत् सलांगुलाः।
जले स्थलेष्ववस्थातुमर्हन्ति मुक्तपुच्छवः।।१३।।

– श्रीरामकृष्ण ने कहा – मेंढक की जब तक पूँछ रहती है, तब तक वह पानी में रहता है। पूँछ झड़ जाने पर वह पानी में भी रह सकता है और तट पर भी रह सकता है।

तथानुचिन्तयन्तो ये भगवन्तं निरन्तरम्।
यदाविद्याविनिर्मुक्ताः स्थातुमुभयतो हि ते।
शक्यः संसार एवापि सच्चिदानन्द-सागरे।।१४।।

।।ओमिति श्रीरामकृष्णगीतासु उत्तमोभक्तो नामैकादशोऽध्यायः।।

शेष भाग अगले पृष्ठ पर

भजन एवं कविता

हे शिव सदा सुमति के स्वामी

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा, रायपुर

हे शिव सदा सुमति के स्वामी, तुम रत सदा जगत कल्यान।
दिव्य शान्ति तुम परम सुपावन, रखते सदा भक्तजन-मान।।
सदा तप्त संसार-ताप जो, देते उन्हें शान्ति का दान ।
दुख-कष्ट उनका तुम हरके, अमृत भरते उनके प्रान ।।
हे पशुपति हे देव परात्पर, तुम ही योगिजनों के ध्यान ।
नित्यानन्द स्वरूप तुम्हारा, तुम ही इस जग ज्ञाननिधान।।
तुम ही इस जग के हो कारण, तुम करते संहार महान ।
तुम ही हो प्रभु मोक्षप्रदायक, हरते क्रोध मोह अज्ञान ।।
नीलकंठ प्रभु पिनाकधारी, मुझको दो तुम यह वरदान ।
तेरी कृपादृष्टि मैं पाऊँ, गाऊँ नित तव महिमा-गान ।।

बाणासुर के तुंग शखिर पर

डॉ. अनिल कुमार 'फतेहपुरी', गयाजी, बिहार

बाणावर के तुंग शिखर पर, सिद्धनाथ बैठे साकार,
कृपा प्रसाद पा पाकर जिनसे, जाते सब भवसागर पार ।
सकल सिद्धि के दाता शंकर, करुणा के अक्षय आगार,
शरणागत को अभयदान दें, ज्ञान-भक्ति-सुख का दें सार।।

दी स्वर्णिम लंका रावण को, और कुबेर को धन-भंडार,
रामचन्द्र को विजय दिया, और बाणासुर को शक्ति अपार ।
चक्र सुदर्शन हरि को देकर, दिया सृष्टि रक्षण का भार,
सृष्टि-सृजन ब्रह्मा को देकर, स्वयं लिया कर में संहार ।।

हे प्रलयंकर अवढरदानी, महिमा तेरी अपरम्पार,
तीन लोक चौदहो भुवन के, परम पिता पावन आधार ।
सृष्टि के कण-कण में अंकित, तेरी लीला सर्वाधार,
जगत नियन्ता घट-घट वासी, विश्वनाथ तुम परम उदार ।।

तव दर्शन के इच्छुक हम भी, आये हैं तेरे दरबार,
करो कृपा भोले-भंडारी, हो मुझ पर थोड़ा उपकार।
हर्ष हृदय में, तन में शक्ति, औ मन में दे शुद्ध विचार ,
पग-पग पर दे विजयदान, और अन्तकाल भव से दे तार ।।

प्रभु मुझको इतना बल दे दे

विजय कुमार श्रीवास्तव

प्रभु मुझको इतन बल दे-दे, अन्तरतम में झाँक सकूँ,
युगल मूर्ति राधा-मोहन की, अपलक रहकर ताक सकूँ ।
मुझे पता है प्यारे मोहन, हृदय-गुहा में रहते हैं।
राधा की अध्यात्म शक्ति संग, जग में खुशियाँ भरते हैं ।
कभी रुके ना क्रमिक साधना, लम्बी दूरी नाप सकूँ,
प्रभु मुझको इतना बल दे-दे अन्तरतम में झाँक सकूँ ।।
मेरी साँसें अटक-झटक कर जिसके दम से चलती हैं,
वह ही राम, कृष्ण भी वह ही, जिससे दुनिया पलती है।
वह ही जीवन की अभिलाषा, आशाओं का संगम है,
उसकी इच्छा से वसुधा पर, चहुँदिश हर-हर, बम-बम है।
चाह यही नित अपने अन्दर, पा उसको मैं जाग सकूँ,
सो न सकूँ उसके दर्शन बिन, अन्तरतम में झाँक सकूँ ।।
मैं तो छोटा एक अकिंचन, वह जग-जीवन का स्वामी,
हो न अनुग्रह यदि उसका तो, तरे न पापी, खल-कामी।
वह ही दृष्टि, वही द्रष्टा है, वह ही जीवों का है दम,
उसकी कृपा बिना पड़ जाती, हैं जीवों की साँसें कम।
लक्ष्य दूर पग मेरे छोटे, दूरी कैसे नाप सकूँ,
अब मायापति मुझे दृष्टि दे, जिससे खुद में झाँक सकूँ ।।
मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्वारे में, गिरजाघर में मिला नहीं,
टूट गया मैं उसे खोजते, हृदय-कल्पद्रुम खिला नहीं ।
घूमा भटका भव्य मठों में, अनायास चक्कर काटा,
रार बढ़ायी स्वयं अहं की, किन्तु न प्रेम कभी बाँटा ।
दिव्य प्रेम अब घोल हृदय में, अपनेपन का स्वाद चखूँ,
प्रभु मुझको इतना बल दे-दे, अन्तरतम में झाँक सकूँ ।।

पिछले पृष्ठ का शेष भाग

– वैसे ही भगवान का चिन्तन करके जो लोग अविद्या से विशेष रूप से मुक्त हो गये हैं, वे लोग दोनों स्थानों में सच्चिदानन्द सागर में भी रह सकते हैं और संसार में भी रह सकते हैं।

।।ॐ श्रीरामकृष्ण-गीता का 'उत्तम भक्त' नामक ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त।।

(क्रमशः)

वेदान्त क्या है : शंकराचार्य से स्वामी विवेकानन्द तक

स्वामी प्रणवानन्द

अध्यक्ष, दक्षिणामूर्ति मठ, पुरी, ओड़िसा

परिचय – वेदान्त, जिसका शाब्दिक अर्थ है 'वेदों का अन्त'। यह भारतीय दर्शन की आधारशिला है, जो उपनिषदों, ब्रह्मसूत्रों और भगवद्‌गीता से प्रेरित है। यह वास्तविकता, आत्मा और मुक्ति की प्रकृति की खोज करता है। यह लेख आदि शंकराचार्य (८वीं शताब्दी), जिन्होंने अद्वैत वेदान्त को व्यवस्थित किया और स्वामी विवेकानन्द (१८६३-१९०२), जिन्होंने इसे आधुनिक विश्व में सार्वभौमिक बनाया, के दृष्टिकोण से वेदान्त की व्याख्या करता है। उनकी व्याख्याएँ जो अद्वैत पर आधारित हैं, आत्म-साक्षात्कार का एक स्पष्ट और कालातीत मार्ग प्रस्तुत करती हैं।

शंकराचार्य का अद्वैत वेदान्त : अद्वैत का आधार – आदि शंकराचार्य एक पूजनीय दार्शनिक-संत ने अद्वैत वेदान्त को व्यवस्थित किया, जिसमें व्यक्तिगत आत्मा (आत्मन्) और परम वास्तविकता (ब्रह्म) की एकता पर बल दिया गया। उनके शिक्षण, जो प्रस्थानत्रयी-उपनिषद, ब्रह्मसूत्र और भगवद्‌गीता पर आधारित हैं, वेदान्त को ज्ञान के माध्यम से मुक्ति का मार्ग बताते हैं।

शंकराचार्य के वेदान्त के मूल सिद्धान्त

१. ब्रह्म ही एक मात्र सत्य : शंकराचार्य ने सिखाया कि ब्रह्म जो अनन्त और गुणरहित है, एकमात्र सत्य है, विश्व की बहुलता अज्ञान के कारण माया (भ्रम) है। अपने ब्रह्मसूत्र भाष्य में वे कहते हैं, "ब्रह्म सत्य है, विश्व मिथ्या है और जीवात्मा ब्रह्म से भिन्न नहीं है।"[१]

२. माया और अज्ञान : माया ब्रह्म की वास्तविक प्रकृति को छिपाती है, जिससे विश्व सत्य प्रतीत होता है। शंकराचार्य बताते हैं कि आत्मज्ञान से यह भ्रम नष्ट हो जाता है।[२]

३. मुक्ति का मार्ग : आत्मन् और ब्रह्म की एकता का बोध ही मुक्ति (मोक्ष) है। इसके लिए शास्त्रों का अध्ययन, चिन्तन और ध्यान आवश्यक है, जैसा कि विवेकचूडामणि में बताया गया है।[३]

४. शास्त्रों की भूमिका : शंकराचार्य की प्रस्थानत्रयी पर टीकाएँ वेदान्त को समझने का व्यवस्थित ढाँचा प्रदान करती हैं। वे अज्ञान को दूर करने के लिए ज्ञानयोग पर जोर देते हैं।[४]

शंकराचार्य का दृष्टिकोण बौद्धिक और आध्यात्मिक था, जो विद्वानों और संन्यासियों के लिये था। उन्होंने मठों की स्थापना की, जिससे अद्वैत का प्रभाव स्थायी रहा।

स्वामी विवेकानन्द का व्यावहारिक वेदान्त : एक सार्वभौमिक दृष्टि – श्रीरामकृष्ण देव के शिष्य स्वामी विवेकानन्द ने १९वीं शताब्दी में वेदान्त को पुनर्जन्म दिया और इसे १८९३ में शिकागो में विश्व धर्म संसद में विश्व मंच पर प्रस्तुत किया। उनके ऐतिहासिक व्याख्यान ने वेदान्त को सार्वभौमिक दर्शन के रूप में स्थापित किया। शंकराचार्य के अद्वैत पर आधारित होते हुए भी विवेकानन्द की व्याख्या गतिशील, व्यावहारिक और समावेशी थी।

विवेकानन्द के वेदान्त के प्रमुख पहलू

१. आत्मा की दिव्यता : विवेकानन्द ने जोर दिया कि प्रत्येक आत्मा स्वाभाविक रूप से दिव्य है। उन्होंने कहा, 'प्रत्येक आत्मा अव्यक्त रूप से दिव्य है, लक्ष्य है इस दिव्यता को प्रकट करना।[५] यह वेदान्त के आत्म-साक्षात्कार के लक्ष्य को रेखांकित करता है।

२. उपयोगी वेदान्त : विवेकानन्द ने वेदान्त को आधुनिक जीवन के लिए उपयोगी बनाया। शिक्षा, सामाजिक सुधार और सेवा में इसके उपयोग पर बल दिया। १८९७ में रामकृष्ण मिशन की स्थापना इस दृष्टि को मूर्त रूप देती है।[६]

३. धर्मों का समन्वय : विवेकानन्द ने वेदान्त को सभी धर्मों के लिए एक समन्वयकारी ढाँचा माना। शिकागो में उन्होंने कहा, ''वेदान्ती घोषणा करता है कि एकता ही एकमात्र सत्य है, बाकी सब स्वप्न है।[७] वे मानते थे कि सभी आध्यात्मिक मार्ग एक ही सत्य की ओर ले जाते हैं।

४. विज्ञान और आध्यात्मिकता : विवेकानन्द ने वेदान्त को आधुनिक विज्ञान के साथ यह कहते हुए जोड़ा कि दोनों सत्य की खोज करते हैं। उन्होंने चेतना की खोज को वैज्ञानिक अनुसन्धान के पूरक के रूप में देखा।[८]

विवेकानन्द का वेदान्त जीवन्त और कर्म-उन्मुख था, जो लोगों को उद्देश्यपूर्ण जीवन और एकता के लिए प्रेरित करता था। उनके व्याख्यान और लेखन ने भारतीय और पश्चिमी; दोनों दर्शकों को प्रभावित किया।

शंकराचार्य और विवेकानन्द की तुलना – एक सरल विश्लेषण : दोनों दार्शनिकों ने अद्वैत वेदान्त को बढ़ावा दिया, लेकिन उनके दृष्टिकोण और सन्दर्भ भिन्न थे।

ध्यान : शंकराचार्य का वेदान्त गहन दार्शनिक अनुसन्धान था, जो संन्यास और शास्त्रीय अध्ययन पर केन्द्रित था।[९] विवेकानन्द ने उसी अद्वैत को व्यावहारिक बनाया, सेवा और सामाजिक उत्थान पर जोर दिया।[१०]

श्रोता/उपयोगकर्ता : शंकराचार्य ने वाद-विवाद और टीकाओं के माध्यम से प्राचीन भारत के विद्वानों को संबोधित किया।[११] विवेकानन्द ने वैश्विक और आधुनिक दार्शनिकों को, जिसमें संदेहवादी और उपनिवेशित लोग थे, उन्हें सरल व्याख्यानों से प्रभावित किया।[१२]

पद्धति : शंकराचार्य की पद्धति शास्त्रीय और दार्शनिक थी, जो प्रस्थानत्रयी पर आधारित थी।[१३] विवेकानन्द ने व्याख्यान, लेखन और रामकृष्ण मिशन जैसे संस्थानों का उपयोग किया।[१४]

सार्वभौमिकता : दोनों ने अद्वैत पर बल दिया, लेकिन विवेकानन्द ने इसे धार्मिक समन्वय और सामाजिक समानता के लिए विस्तारित किया।[१५] उन दोनों का साझा दृष्टिकोण था कि वेदान्त अस्तित्व की एकता को प्रकट करता है, जो आत्म-साक्षात्कार की ओर ले जाता है।

वेदान्त की आधुनिक प्रांसगिकता – शंकराचार्य और विवेकानन्द की शिक्षाएँ आज भी प्रासंगिक हैं। शंकराचार्य का आत्म-अनुसंधान माइंडफुलनेस प्रथाओं के साथ मेल खाता है, जो आन्तरिक शान्ति का मार्ग देता है।[१६] विवेकानन्द की सार्वभौमिकता सर्वधर्म समन्वयक संवाद और सामाजिक सक्रियता को प्रेरित करती है, जो विभाजन और भौतिकवाद का उत्तर देती है।[१७] रामकृष्ण मिशन और वेदान्त सोसाइटी जैसे संगठन आध्यात्मिकता और सेवा को जोड़ते हैं।

निष्कर्ष – शंकराचार्य और विवेकानन्द के दृष्टिकोण से वेदान्त एकता और आत्म-साक्षात्कार का दर्शन है। शंकराचार्य ने इसकी बौद्धिक नींव रखी, यह सिखाते हुए कि ब्रह्म ही सत्य है और ज्ञान से मुक्ति मिलती है।[१८] विवेकानन्द ने इसे जीवन्त और सार्वभौमिक दर्शन बनाया, जो आधुनिक जीवन और वैश्विक एकता के लिए प्रासंगिक है।[१९] दोनों मिलकर वेदान्त को ब्रह्म के सत्य में सभी अस्तित्व को एक करनेवाला मार्गदर्शक बनाते हैं। ○○○

सन्दर्भ : (१) शंकराचार्य, ब्रह्मसूत्र भाष्य, १.१.१. अनु. स्वामी गम्भीरानन्द (कोलकाता, अद्वैत आश्रम १९८३), १२ **(२)** शंकराचार्य, विवेकचूड़ामणि श्लोक, १०८, अनु. स्वामी माधवानन्द (कोलकाता, अद्वैत आश्रम २००१), ४५ **(३)** वही, पृ. २० **(४)** शंकराचार्य, उपदेशसाहस्री, १.१.६, श्लोक, अनु. स्वामी जगदानन्द (चेन्नई : श्री रामकृष्ण मठ, १९९६) पृ. १० **(५)** स्वामी विवेकानन्द, cw खंड १ (कोलकाता, अद्वैत आश्रम, २००३), १२४ **(६)** वही, खंड ५, पृ.१५ **(७)** वही, पृ. ६ **(८)** वही, पृ. १३८ **(९)** शंकराचार्य, उपदेशसाहस्री, १.१.६, पृ. १० **(१०)** स्वामी विवेकानन्द, cw खंड ५, पृ. १५ **(११)** शंकराचार्य, ब्रह्मसूत्रभाष्य, १.१.१ अनु. स्वामी गम्भीरानन्द (कोलकाता : अद्वैत आश्रम, १९८३), पृ.१२ **(१२)** स्वामी विवेकानन्द, cw खंड १, पृ. ३-६ **(१३)** शंकराचार्य, विवेकचूड़ामणि श्लोक, ४९,पृ. २० **(१४)** स्वामी विवेकानन्द, cw खंड ५, पृ. १५ **(१५)** वही, खंड १ पृ. ६ **(१६)** शंकराचार्य, विवेकचूड़ामणि श्लोक, १०८, अनु. स्वामी माधवानन्द (कोलकाता: अद्वैत आश्रम २००१) पृ. ४५ **(१७)** स्वामी विवेकानन्द, cw खंड २, पृ. १३८ **(१८)** शंकराचार्य, ब्रह्मसूत्र भाष्य, १.१.१. अनु. स्वामी गंभीरानन्द पृ. १२ **(१९)** स्वामी विवेकानन्द, cw खंड १, पृ. १२४

श्रीरामकृष्ण-स्तुति–७

रामकुमार गौड़, वाराणसी

(तर्ज-भये प्रकट कृपाला दीनदयाला)

करि भक्ति पुनीता, मन-नवनीता, नहिं डूबत जग-नीरा ।
होकर निर्लिप्ता, पावन तृप्ता, धन्य हो मनुज-शरीरा ।।
करि निर्जन-वासा, हो प्रभु-दासा, भक्ति करो परमेशा ।
तब हृदय प्रदेशा, चिन्मय वेशा, दर्शन दें हृदयेशा ।।७६।।
हरि-जप करि निर्जन, शान्त सहज मन, मिलै दरश परमेशा ।
बहै लोचन नीरा, पुलक शरीरा, गदगद कंठ विशेषा ।।
ज्यों बाँध जंजीरा, गंगा-तीरा, काष्ठ तैरता नीरा ।
फिर पकड़ जंजीरा, सुरसरि-तीरा, तक पहुँचत मतिधीरा।।७७।।

त्यों भगवत्-जापा, से सब पापा, कटहिं, मिटै भव-पीरा ।
मन हो हरि-लीना, प्रेमाधीना, शुभ रोमांच शरीरा ।
जपि भगवन्नामा, मन निष्कामा, इस संसार-कुटीरा।
करि साधू-संगा, भगवत्गंगा, पीवत निर्मल नीरा ।।७८।।
ईश्वर बाजीगर, जग-कौतुककर, जगत-खेल दिखलाते ।
मोहित नर-नारी, कौतुक भारी, बुद्धि से थाह न पाते ।।
सच है जादूगर, जादू नश्वर, ठीक समझ जब आये ।
तब हरि-जादूगर, सुहृद जानि, नर कृपा अमित बरसाये ।।७९।।

हरि नर-अन्तरतम, रहत निकटतम, परम सुहृद आत्मीया ।
नर हो अभिमानी, हरि अज्ञानी, रखै भाव परकीया ।।
अति विकल प्रार्थना, भाव-अर्चना, ईश्वर द्रवित विशेषा ।
हे चिद्घन विग्रह, करो अनुग्रह, दरश दो हृदयप्रदेशा ।।८०।।
दो तरह के भक्ता, हरि-अनुरक्ता, करैं प्रीति जगमाता ।
इक शिशु बिल्ली सम, इक बन्दर सम, निर्भर रह निज माता ।।
जो शिशु बिल्ली-सम, भक्त रहत सम, भाव सरल मन शुद्धा ।
जहँ बिल्ली राखै, म्याऊँ भाखै, चलै न मातु-विरुद्धा।।८१।।

रखती बिस्तर पर, कभी धूल पर, फिर मुख में ले जाए।
चिन्ता रखे माता, शिशु तहँ जाता, बिल्ली जहँ सुख पाए।।
इमि जो हरि-निर्भर, भक्त-भावधर, हरि-आश्रय सुख पाए।
हरि रखैं जहाँ, करै वास तहाँ, वह निर्भर भक्त कहाए ।।८२।।
जो शिशु बन्दर सम, भक्त न हरदम, निर्भर हो निज माता ।
तन चिपक रहत नित, रख आग्रह चित, रहै वहीं जहँ माता ।
इमि रहि माता-सह, रख निज आग्रह, पुरुषारथ कर धावै ।
जब थकै सकल बल, आशा-सम्बल, तब निर्भरता आवै ।।८३।।

यह जग जिमि नीरा, नर-मन क्षीरा, मिलत एक हो जाए ।
नर-मन संसारा, लीन अपारा, दिव्य स्वरूप भुलाए ।।
निर्मल उर-बर्तन, रखै क्षीर-मन, रख सुनसान जमावै ।
दधि सघन पुनीता, मथि नवनीता, खाय तृप्त हो जावै ।।८४।।
पग शूल चुभै जब, अन्य शूल तब, लेकर अपने हाथा ।
मन धीरज पालै, उसे निकालै, फेंकै दोउ एक साथा ।।
कंटक-अज्ञाना, चुभै पुराना, शूल लाइ तब ज्ञाना ।
नर सहज निकारै, दोउ महि डारै, तब पावै विज्ञाना ।।८५।।

मन रहै अधीरा, लोचन नीरा, बहै दाँत की पीरा ।
व्रण पीठ में होए, निद्रा खोए, अति बेचैन शरीरा ।।
मन लगा रहै नित, पीड़ामय चित, लीन रहै थल-पीरा ।
करि सब जग-कामा, मन उस ठामा, जहाँ होय अति पीरा।।८६।।
जिमि सहि बहु पीरा, परम अधीरा, मन व्याकुल हो भारी ।
तिमि रहि संसारी, हे नर-नारी, रहो विकल, अविकारी।।
जिमि जेहि थल पीरा, होय अधीरा, मन रह नित सिमटाई।
तिमि करि जग-कामा, मन रखि रामा, भक्ति करो सुखदाई ।।८७।।

जब तक नहिं सरला, हृदय सुविमला, होता शान्त-स्वभावा ।
तब तक हरि-प्रियतम, नहिं, अन्तरतम, चिन्मय तनु धरि आवा।।
जब तक नहिं तागा, सीधा धागा, सुई-छिद्र नहिं जाए ।
तिमि बिनु मन सरला, शान्त सुविमला, हरि-दर्शन नहिं पाए ।।८८।।
बिनु भजन-विरागा, हरि-अनुरागा, शास्त्र-ज्ञान नहिं सोहै ।
नर-मन अविरामा, कंचन-कामा, विषयाधीन विमोहै ।।
बिनु भजन-विरागा, नर जिमि कागा, उड़ै शास्त्र-नभ भाई।
मन सोचै प्रतिपल, कहाँ विषय-मल, जीवन व्यर्थ गँवाई।।८९।।

है बालू-शक्कर–,मय जग-दुखकर, जिह्वा स्वाद न भासै ।
बिनु भजन-विवेका, स्वाद न एका, जग भोजन-सुख नाशै।।
रहि जग सम-चींटी, बालू छींटी, मधु-शक्कर मुख ग्रासै ।
जो अस उपदेशा, प्रभु परमेशा, सो मम मतिमल नाशै।।९०।।
जय जय नरदेवा, अनुपम सेवा, कर सबको समझाए।
दुर्दशा देखकर, तीर्थ-देवघर, नयन-अश्रुजल छाए।।
तब परदुखकातर, करुणा-अन्तर, तीरथ-गमन भुलाए।
भोजन करवाए, वस्त्र बँटाए, मथुरनाथ समझाए ।।९१।।

सत्संग

चम्पा भट्टाचार्य, भिलाई

सत्संग यह शब्द, दो शब्दों के मेल से बना है। प्रथम शब्द है सत् और दूसरा शब्द है संग। सत् शब्द का अर्थ है परम सत्य और द्वितीय शब्द का अर्थ है साथ। कुल मिलाकर सत्संग का शाब्दिक अर्थ हुआ – ईश्वर से जुड़ना। ईश्वर ही शाश्वत हैं, अनादि हैं, अत: सत्संग करें। हमलोगों के लिए हमेशा ईश्वर से संयुक्त रहना प्राय: असम्भव-सा लगता है। इसलिए कभी-कभी कुछ समय के लिये या नियमित रूप से समान विचारोंवाले व्यक्ति के साथ ईश्वरीय वार्तालाप करना सत्संग कहलाता है। हम सत्संग में अध्यात्म सम्बन्धी बातें प्रश्नोत्तर के माध्यम से प्राप्त करते हैं। यदा-कदा अध्यात्म सम्बन्धी शंका का निवारण भी करते हैं। कभी-कभी दूसरों की श्रद्धा से प्रेरित होकर अपने साधना-पथ पर दृढ़ भी होते हैं। जैसे अग्नि को प्रज्वलित रखने के लिए हवा आवश्यक है, उसी प्रकार साधना को आगे बढ़ाने के लिए सत्संग अनिवार्य है। सत्संग एक भाव है, जो हमें आध्यात्मिक पथ पर अग्रसर करता है।

सत्संग कैसे करें?

समय-समय पर ज्ञानियों, गुणीजनों एवं सन्तों से मिलकर अध्यात्म सम्बन्धी बातों को सुनना एवं आत्मसात् करना सत्संग है। सन्तों, महापुरुषों का सान्निध्य तो सौभाग्यशाली लोगों को ही मिलता है। अपनी बुद्धि को भगवान के चरणों में समर्पित करना है, तो साधु-सन्तों से सत्संग अनिवार्य है। भवसागर पार करने के लिए नौका चाहिए और नौका है साधु-संगति।

सत्संग के लिए साधना-पथ में बाधक तत्त्वों को छोड़ना चाहिए। ठाकुर श्रीरामकृष्ण ने उदाहरण देते हुए कहा था कि विभीषण ने अपने दुराग्रही भाई रावण को त्यागकर ही श्रीरामचन्द्र को प्राप्त किया था।

प्रतिदिन नियमानुसार सद्ग्रंथों का अध्ययन करना भी सत्संग का भाग है। जैसे श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीमद्भागवत, श्रीरामचरितमानस, श्री'म' रचित श्रीरामकृष्णवचनामृत, वेद-उपनिषद आदि का स्वाध्याय करना सत्संग है।

सत्संग क्यों करें?

जब हम सत्संग में उपस्थित रहते हैं, तब सत्संग की उच्च आध्यात्मिकता का हम पर प्रभाव पड़ता है। वहाँ का वातावरण, तन-मन दिव्य चैतन्य से भर जाता है। सत्संग का सर्वोत्तम उदाहरण है – 'नरेन्द्र'। आरम्भ में जब नरेन्द्र ठाकुर श्रीरामकृष्ण के पास आए, तो उनमें ईश्वर के स्वरूप की स्पष्ट अवधारणा नहीं थी। जैसे साकार देवता को न मनना, मूर्तिपूजा का विरोध करना। परन्तु जिस दिन से वे श्रीरामकृष्ण के संस्पर्श में आए, उसी दिन से ही उनके विचारों में धीरे-धीरे परिवर्तन होने लगा।

कहते हैं, कभी-कभी देवता भी सूक्ष्म रूप से सत्संग में उपस्थित होकर साधकों पर कृपा करते हैं। आप सोचेंगे कैसे? जैसे अग्निकुण्ड के आसपास बैठे लोगों को अग्नि की उष्णता का अनुभव होता है, वैसे ही सत्संग में उपस्थित सभी साधकों की साधना को अन्य साधकों की आध्यात्मिक अनुभूतियों से पोषण मिलता है।

सत्संग से मानसिक व्यापकता और दूसरों के प्रति प्रेम विकसित होकर आत्मीयता पनपने लगती है। ठाकुर जानते थे कि गिरीश घोष और सुरेन्द्र मित्र दुराचारी थे, किन्तु श्रीरामकृष्ण ने उनको भी अपने स्नेह और सान्निध्य से सन्मार्ग पर लाया, उन्हें भक्त एवं सज्जन बनाया। इस प्रकार महान पुरुषों के साथ सत्संग करने से आचरण में परिवर्तन होता है, व्यक्ति सदाचारी, नैतिक और भगवान की ओर बढ़ता है।

सत्संग का महत्त्व

सत्संग के महत्त्व को प्रदर्शित करनेवाली यह लघु कहानी पठनीय है – एक बार वशिष्ठ और विश्वामित्र ऋषि के बीच विवाद हो गया कि सत्संग बड़ा है या तपस्या? इस विवाद के निष्कर्ष हेतु दोनों देवता के पास गए। देवता ने कहा – इसका निष्कर्ष शेषनाग के पास है। दोनों शेषनाग के पास पहुँचे और आने का प्रयोजन शेषनाग को बताया। सारी बातें सुनकर शेषनाग ने कहा – जो मेरे सिर से पृथ्वी का भार थोड़ा कम कर दे, वही श्रेष्ठ है। तत्पश्चात् विश्वामित्र ऋषि ने संकल्प किया कि मैं अपने एक हजार वर्ष के तपस्या का फल अर्पण करता हूँ। शेषनाग के सिर से पृथ्वी थोड़ी-सी

शेष भाग पृष्ठ ५१९ पर

बच्चों में पाठशाला के प्रति प्रेम विकसित करें

सुश्री विजयलक्ष्मी

बच्चों को पाठशाला जाने से पूर्व पाठशाला के प्रति आकर्षण उत्पन्न करना माता-पिता का अनिवार्य कर्त्तव्य है। बच्चा जब छोटा रहता है, तभी से बातचीत के दौरान पाठशाला के महत्त्व तथा उससे होनेवाले लाभों की चर्चा बच्चों से करते रहने से उनकी पाठशाला जाने की उत्कंठा बढ़ जाती है और वे पाठशाला में भरती होने की प्रतीक्षा बड़ी आतुरता से करते हैं। जब उन्हें पाठशाला में भरती करने का समय आता है, तो कभी घर वालों को तंग नहीं करते। पाठशाला-प्रवेश के समय बच्चों पर जोर-जबरदस्ती का अवसर नहीं आता। इस प्रकार बच्चे का मानसिक स्तर पाठशाला जाने को तैयार रहता है।

प्राथमिक पाठशाला में भरती होने के पूर्व बच्चों को बाल-मन्दिर भेजने से बच्चे पाठशाला के वातावरण से परिचय प्राप्त कर अगली कक्षा में बड़े उत्साह से जाते हैं। जिन बच्चों के मन में प्रारम्भ से पाठशाला के प्रति अरुचि उत्पन्न हो जाए, तो उन्हें पाठशाला भेजना टेढ़ी खीर हो जाती है। अत: बालक के मन में पाठशाला के लिए ललक उत्पन्न करना आवश्यक है।

बच्चा जब घर के सीमित परिवार से बाहर जाता है, तो उसका नये साथियों, शिक्षकों तथा अन्य लोगों से परिचय होता है। बच्चे पाठशाला के वातावरण में आनन्द अनुभव करते हैं, क्योंकि उनकी विकास करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति को वहाँ बल मिलता है। बच्चे सभी प्रकार के भेदों से मुक्त होकर आपस में खेलते हैं। बच्चों की यह प्रवृत्ति बढ़े, इसका प्रयत्न माता-पिता को करना चाहिए।

बच्चों में नियमित पाठशाला जाने तथा पढ़ाई करने की आदत को विकसित करना चाहिए। माता-पिता को चाहिए कि वे रोज पाठशाला में हुई पढ़ाई के बारे में बच्चों से कुछ-न-कुछ प्यार से पूछते रहें। साथ ही नियमित रूप से घर पर भी बच्चा अपना पाठ पढ़े, इसका ध्यान माता-पिता रखें। कभी-कभी बच्चे के शिक्षक से मिलकर उसकी प्रगति की जानकारी करते रहना चाहिए। इस सावधानी के कारण बच्चे की पढ़ाई में किसी प्रकार का व्यवधान नहीं आयेगा।

बच्चों में स्वच्छता का गुण पैदा करना आवश्यक है। बच्चे साफ-सुथरे कपड़े पहनें, पाठशाला में अपने बालों को सँवारकर जायें, स्याही के दाग कपड़े पर न पड़ें, इसका ध्यान रखें, पाठशाला के बाहर बिकने वाली गंदी वस्तुएँ न खायें और पाठशाला से लौटने के बाद अपनी पुस्तकें निर्धारित स्थान पर रखें। इन बातों की जानकारी बच्चों को देते रहें। बचपन में पड़ी आदतें ही जीवन भर बनी रहती हैं। बच्चे बचपन से कहानी सुनने, गाना-गाने, तमाशा देखने आदि में रुचि लेते हैं। उनकी इस प्रवृत्ति को उभारने के लिये उचित वातावरण का निर्माण करना चाहिए। बच्चों को शिक्षाप्रद कहानियाँ बताकर उनसे कहने को कहा जाये, इससे बालक की वाणी को स्पष्ट होने का अवसर प्राप्त होता है। उनको सिनेमा के गंदे गीतों के स्थान पर राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत गीत, कोरस मार्च-गान आदि का अभ्यास पाठशाला में कराना चाहिए, जिससे कहानी, गीत आदि की भूख शान्त हो सके। बच्चों में खेलों के प्रति स्वाभाविक झुकाव होता है। इस बात को ध्यान में रखकर बच्चों को खेल की अधिक से अधिक सुविधा पाठशाला में देनी चाहिए, जिससे पाठशाला बच्चों के आकर्षण का केन्द्र बनी रहे। पाठशाला में खेलों के माध्यम से बच्चों में सहयोग, सहनशीलता, साहस आदि गुणों का विकास करने का प्रयत्न करना चाहिए। इसी प्रकार खेलकूद के सिवाय सांस्कृतिक कार्यक्रमों में बच्चों को सम्मिलित होने का अवसर देना चाहिए। बच्चों को वेशभूषा, प्रतियोगितायें, सामूहिक नृत्य, सामूहिक गान आदि के अवसर देते रहना चाहिए, जिससे पाठशाला में उनकी रुचि बनी रहे।

बच्चों का मन चंचल होता है। एकाग्रता के बिना कोई पाठ याद करना सम्भव नहीं। गिनती, पहाड़े, कविता, शब्दार्थ आदि को वे रटकर ही याद कर पाते हैं। बचपन में जो कविताएँ बच्चों द्वारा रटी जाती हैं, वे ही उनके जीवन में अनेक वर्षों तक काम आती हैं। अत: बच्चों की याद करने की प्रवृत्ति को बढ़ाना चाहिए।

बच्चों में यह प्रवृत्ति बढ़ाना कठिन नहीं है। बच्चों में नई-नई बातें सीखने-जानने की सहज प्रवृत्ति होती है। बच्चों

की आयु और मस्तिष्क के विकास का ध्यान रखते हुए उनके अनुरूप छोटी-छोटी प्रेरक कविताएँ तथा गीत, उन्हें बड़ी अच्छी तरह याद कराये जा सकते हैं। उन्हें याद करने पर बच्चों की प्रशंसा की जाये, प्रोत्साहन दिया जाये, तो वे इस दिशा में बहुत तीव्रता से आगे बढ़ते हैं। अन्ताक्षरी करना भी इस दिशा में बड़ा उपयोगी होता है, किन्तु ध्यान यह रखा जाये कि बच्चे निरर्थक और निरुपयोगी अथवा विकृत पद याद न करें। अन्ताक्षरी को मात्र खेल ही नहीं, अच्छा मानसिक व्यायाम माना जाये। संस्कृत के श्लोक भी बच्चे बड़ी जल्दी याद कर लेते हैं। अर्थ वे समझें या न समझें, अच्छे श्लोक याद करा देने से वे आयु बढ़ने के साथ-साथ उन्हें समझने लगते हैं तथा उनसे प्रेरणा भी लेने लगते हैं।

पाठशाला के प्रति बच्चों का आकर्षण बनाये रखने के लिये यह आवश्यक है कि शिक्षक बच्चों के प्रति मधुर व्यवहार करें। यदि शिक्षक ने बच्चों को आते ही डराना-धमकाना आरम्भ कर दिया, तो बच्चों को पाठशाला भेजना कठिन हो जाता है। अत: शिक्षक का व्यक्तित्व बच्चों के लिए प्रेरणादायक होना चाहिए। बच्चों के मन में शिक्षक के प्रति जो उच्च सम्मान है, उसको बनाये रखने के लिए शिक्षक को आदर्श व्यवहार करना और उत्कृष्ट जीवन जीना चाहिए।

बच्चों में जिज्ञासा बहुत अधिक होती है। उन्हें हर प्रश्न का उचित उत्तर और हर शंका का उचित समाधान देना चाहिए। यदि शिक्षकों ने उनकी उत्सुकता के अनुकूल उत्तर नहीं दिया, तो उनकी उत्कंठा मारी जाती है और वे डर के मारे आगे कुछ पूछने का साहस नहीं करते। बड़े होने पर भी वे अपने दब्बू स्वभाव के कारण हानि उठाते हैं। इस हानि के लिए कुछ अंश तक शिक्षक भी उत्तरदायी होता है। अत: बच्चों की हर जिज्ञासा को पूरा करना चाहिए।

जिज्ञासा गहन चिन्तन की प्रवृत्ति को बढ़ाती है। उसे कुंठित कर देने से चिन्तन की, गम्भीर विचार करने की प्रवृत्ति में गतिरोध आ जाता है। यह बात सही है कि बच्चों की जिज्ञासाएँ कभी-कभी बड़ी अटपटी होती हैं तथा उनका समाधान करना कभी समयसंगत होता है, कभी नहीं भी होता है। कई बार वे ऐसे प्रश्न भी कर बैठते हैं कि उनका समाधान बिना सोचे-अध्ययन किये बड़े लोग भी नहीं कर सकते। ऐसे अवसरों पर बच्चों को उनके अटपटे प्रश्नों के लिये डाँटने अथवा कठिन प्रश्नों का ऊटपटांग उत्तर देने की अपेक्षा उन्हें समझदारी से टाल देना चाहिए। बाद में उनका उचित समाधान शान्त चित्त से निकाला जा सकता है।

बच्चे यदि कोई गलत कार्य करते हों, तो उन्हें प्रारम्भ में ही रोक देना चाहिए। वे यदि किसी की वस्तु उठाकर लाते हैं, तो उसे तुरन्त वापस करने को कहना चाहिए। यदि इस प्रवृत्ति को प्रारम्भ में न रोका गया, तो वह आगे बढ़ती जायेगी और कुछ दिनों के बाद बच्चों के स्वभाव में दृढ़ हो जायेगी। बच्चों की गंदी आदतों को माता-पिता एवं अध्यापकों के द्वारा शुरू में ही रोकने का प्रयत्न किया जाना चाहिए, ताकि ये विष-अंकुर विष-वृक्षों का रूप धारण न कर सकें।

समग्र रूप से विचार किया जाये, तो पाठशाला जाने के पूर्व का कार्य बड़ा गम्भीर एवं दायित्वपूर्ण है। यदि हमने इसमें असावधानी बरती, तो वह हमारे बच्चों के लिए महँगी पड़ेगी। पाठशाला के प्रति उनके मन में आकर्षण कम न हो, इसका भरसक प्रयत्न करना चाहिए। यदि प्रारम्भ में ही बच्चों के मन में अरुचि उत्पन्न हो गई, तो वह पढ़ाई का महत्त्वपूर्ण कार्य वहन नहीं कर पायेगा और उसका जीवन पढ़ाई के बिना असफल हो जायेगा। इसीलिए बच्चों को स्कूल में मात्र प्रवेश करा देना पर्याप्त न समझकर उस सन्दर्भ में अन्य पक्षों पर भी विचार किया जाना चाहिए, अन्यथा उनके साथ सही अर्थों में न्याय नहीं हो सकेगा। ○○○

(आरोग्य, फरवरी-२०२५ से साभार)

पृष्ठ ५१७ का शेष भाग

ऊपर उठ जाए, परन्तु पृथ्वी अपने स्थान से नहीं हिली। इसके बाद वशिष्ठ ऋषि ने संकल्प किया कि मैं आधी घटिका अर्थात् १२ मिनट सत्संग का फल अर्पण करता हूँ। पृथ्वी अपना भार कम कर दें। अब क्या हुआ? पृथ्वी थोड़ी-सी ऊपर उठ गई। अर्थात् सत्संग का महत्त्व बहुत अधिक है।

श्रीरामकृष्ण कहा करते थे – ''जहाँ कई लोग एक साथ मिलकर सत्संग करते हैं, वहाँ प्रभु जी विद्यमान होते हैं।'' सत्संग से ही आपस में आत्मीयता पनपती है, जो हमारे प्राचीन विरासत 'वसुधैव कुटुम्बकम्'' की नींव है। इसी धारणा को बलवती बनाने के लिये ही रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन में जहाँ कहीं मन्दिर बने हैं, उसका आकार विशाल है। उद्देश्य है – भक्तगण आएँ, बैठें और एक साथ प्रभु-नाम करें। जैसे चासनी में कुछ बूँदें दूध की डालकर चासनी के मैल को स्वच्छ किया जाता है, वैसे ही सत्संग की बूँद से जीवन के दोष दूर कर सकते हैं। ○○○

गीतातत्त्व-चिन्तन

चौदहवाँ अध्याय (१४/४)

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द जी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व-चिन्तन' भाग-१ और २, अध्याय १ से ६वें तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ८वाँ अध्याय 'विवेक ज्योति' के सितम्बर, २०१६ से नवम्बर, २०१७ अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है १४वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

चौदहवें अध्याय का लक्ष्य त्रिगुणों के ज्ञान के माध्यम से सांसारिकता पर विजय

इस अध्याय का नाम गुणत्रयविभागयोग है। तीन गुणों का विभाजन और तीन गुणों के विभाजन के माध्यम से योग साधित करना है। गीता की यह अपनी विशिष्ट परम्परा है कि भिन्न-भिन्न प्रकार से जीवात्मा परमात्मा के साथ कैसे जुड़े? यह प्रक्रिया हमारे सामने रखी जा रही है। गीता का प्रत्येक अध्याय एक विशिष्ट दिशा प्रदान करता है। एक दृष्टि से हम एक प्रकार का पथ पाते हैं, तो दूसरे अध्याय में दूसरे पथ का निर्वचन हुआ है। तेरहवें अध्याय में क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ; इन दोनों के विवेचन के माध्यम से हम कैसे उस परात्पर पुरुष के साथ जुड़ सकते हैं, यह प्रकरण हमारे सामने रखा गया था। इस चौदहवें अध्याय में तीन गुणों के माध्यम से इस संसार की उत्पत्ति बताई गई। इस संसार को हम प्रकृति भी कहते हैं। यह शब्द बारम्बार यहाँ आपको मिलेगा। भारतीय दर्शन में कठिनाई यह है कि वेदान्त दृष्टि से प्रकृति का अर्थ अलग होता है और जब हम सांख्य की दृष्टि से देखें, तो प्रकृति का अर्थ अलग मिलता है। इसलिए मन में भ्रम की सृष्टि हो सकती है। इस प्रकार कई शब्दों को समझने में बड़ी कठिनाई होती है। हम उसके पाण्डित्यपूर्ण विवेचन में नहीं जाना चाहते, जिसमें जाकर बहुधा मनुष्य उलझ जाते हैं। हम तो केवल उस दृष्टिकोण को अपनाना चाहते हैं, जो हमारे जीवन के लिए व्यावहारिक बन सकता है। गीता से हम क्या सीख सकते हैं? गीता का हर अध्याय हमारे समक्ष क्या सन्देश रखता है? उसी को समझने की हमारी चेष्टा रहती है। इस दृष्टि से आइए, इस अध्याय को समझने की चेष्टा करें।

प्रारम्भ में ही यह श्लोक आता है, जिसमें प्रभु श्रीकृष्ण कह रहे हैं कि अर्जुन, मैं तेरे समक्ष उस उत्तम ज्ञान को रखता हूँ। इसका अर्थ यह है कि भगवान अर्जुन को पहले भी ज्ञान दे चुके हैं। पर कहते हैं कि यह उत्तम ज्ञान है। इसीलिए इसे मैं तेरे समक्ष रखता हूँ। भिन्न-भिन्न शब्दावली में, भिन्न-भिन्न सन्दर्भों में क्यों बार-बार वही ज्ञान बताते हैं? इसका कारण यह है कि यह ज्ञान अत्यन्त गूढ़ है। समझने में कठिन है। तात्त्विक दृष्टि से भी वह बात समझने में नहीं आती है। फिर तो लाक्षणिक दृष्टि से इसे समझना और भी कठिन हो जाता है। इसीलिए भगवान कृष्ण भिन्न-भिन्न सन्दर्भों में ज्ञान की चर्चा करते हैं। वे कहते हैं कि इस ज्ञान को जानकर मनीषीगण यहाँ से जाने के बाद परम सिद्धि को प्राप्त हो गये। इतो गता: – यहाँ से जाने के बाद अर्थात् संसार से मुक्त होकर। इसके दो अर्थ हो सकते हैं। एक यह कि सांसारिकता से मुक्त होकर, माने उनका शरीर बना हुआ है, पर उनके भीतर सांसारिकता विद्यमान नहीं है। दूसरा अर्थ यह है कि जब वे शरीर छोड़कर जाते हैं, तो परम ज्ञान की स्थिति को प्राप्त हो जाते हैं। दोनों अर्थ अपनी दृष्टि से सही हैं। हम पहले अर्थ को मुख्यता प्रदान करते हैं। यदि मनुष्य मृत्यु को ही प्राप्त हो गया, तो भला ज्ञान का आस्वादन उसने कैसे प्राप्त किया? ज्ञान का आस्वादन तो जीते-जी ही करना चाहिए। **इहैव तैर्जित: सर्गो येषां साम्ये स्थितं मन:** – जैसा कि गीता कहती है, इसी जीवन में जब तक यह शरीर बना हुआ है, यदि हमने सर्ग को जीत लिया, हमने सापेक्षता को जीत लिया, हमने सांसारिकता को जीत लिया, तो हमारी बलिहारी है। शरीर के नष्ट हो जाने के बाद वह ज्ञान मिला, तो वह भी एक अद्‌भुत स्थिति है। पर उस स्थिति का आस्वादन मनुष्य कैसे करेगा? उपनिषदों में भी इसी बात पर जोर दिया गया है कि जीते-जी ही उस ज्ञान का अनुभव कर लो। **इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टि:** – केनोपनिषद् में कहते हैं – यदि हमने जीते-जी ही उस सत्य को जान लिया, तब तो महान लाभ है और यदि नहीं जाना, तो फिर महान विनाश है।

यहाँ पर यह अर्थ किया जा सकता है, जब हमारे जीवन में ऐसे ज्ञान का उद्‌भव होता है, तब हमारी सांसारिकता नष्ट हो जाती है। सांसारिकता का अर्थ है कि हमारी भेदभाव की दृष्टि नष्ट हो जाती है। ज्ञान का अर्थ है – मन का समत्व में आरूढ़ हो जाना।

इस अध्याय में गुणों के विवेचन से उस परम ज्ञान की स्थिति में पहुँचने का उपाय बताया गया है। पाँचवें श्लोक में प्रभु कहते हैं –

सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम्।।५।।

महाबाहो (हे अर्जुन!) सत्वम् रज: तम: (सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण) इति प्रकृतिसम्भवा: गुणा: (ये प्रकृति से उत्पन्न गुण) अव्ययम् देहिनम् देहे निबध्नन्ति (अविनाशी जीवात्मा को शरीर में बाँधते हैं)।

– ''हे अर्जुन! सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण ये प्रकृति से उत्पन्न गुण अविनाशी जीवात्मा को शरीर में बाँधते हैं।''

प्रभु का कहना है कि सत्त्व, रज और तम; इन तीनों गुणों के सम्मिश्रण से यह प्रकृति बनी है। ये तीनों गुण देही को बाँध लेते हैं। देही का अर्थ है जीवात्मा। जीवात्मा और आत्मा का भेद स्पष्ट कर दें। मूल रूप से कोई अन्तर तो नहीं है। आत्मा और जीवात्मा तत्त्व की दृष्टि से एक है। परन्तु जिस समय आत्मा इस माया के द्वारा बन्धन में पड़ता है, अपने को मन-विशिष्ट मानता है, अन्त:करण-विशिष्ट मानता है, तब उसे जीवात्मा कहते हैं। जीवात्मा अर्थात् आत्मा + अज्ञान। आत्मा पर मानो अज्ञान की एक कालिमा पड़ गई। आत्मा के भीतर जब जीवात्म भाव का परिवेश हो जाए, आत्मा अपने को जब यह समझने लगे कि मैं इस शरीर में घिरा हुआ हूँ, तो उसको कहते हैं जीवात्मा। अज्ञान का यदि नाश हो जाए, तो यह जीवात्मा ही आत्मतत्त्व है। उससे बिल्कुल भिन्न नहीं है। जीवात्मा ही देही है, देह का अभिमान करनेवाला। देही, शरीरी या जीवात्मा ये तीनों ही पर्यायवाची शब्द हैं। ये तीन गुण मानो बाँध देते हैं। आत्मा तो मुक्तस्वभाव है, उसे बाँधा नहीं जा सकता। पर मानो बन्धन-सा लगता है। इसके बाद अगले श्लोक में कहते हैं –

सत्त्व, रज और तम के बन्धनों का स्वरूप

तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम्।
सुखसङ्गेन बध्नाति ज्ञानसङ्गेन चानघ।।६।।
रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासङ्गसमुद्‌भवम्।
तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसङ्गेन देहिनम्।।७।।
तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम्।
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत।।८।।

– अनघ तत्र सत्वम् (हे निष्पाप! उनमें सत्वगुण) निर्मलत्वात् प्रकाशकम् अनामयम् (निर्मल होने के कारण प्रकाशवत् विकाररहित है) सुखसंगेन च ज्ञानसंगेन बध्नाति (वह सुख के संग से और ज्ञान के संग से बाँधता है) कौन्तेय रागात्मकम् रज: (हे अर्जुन! रागरूप रजोगुण को) तृष्णासंगमुद्‌भवम् विद्धि (कामना और आसक्ति से उत्पन्न जान) तत्र देहिनम् कर्मसंगेन निबध्नाति (वह जीवात्मा को कर्मासक्ति से बाँधता है) भारत सर्वदेहिनाम् मोहनम् (हे अर्जुन! सब देहाभिमानियों को मोहित करनेवाले) तम: तु अज्ञानजम् विद्धि (तमोगुण को तो अज्ञान से उत्पन्न जान) तत् प्रमादालस्यनिद्राभि: निबध्नाति (वह जीवात्मा को प्रमाद, आलस्य और निद्रा के द्वारा बाँधता है)।

''हे निष्पाप! उनमें सत्त्वगुण निर्मल होने के कारण प्रकाशवत् विकाररहित है। वह सुख के संग से और ज्ञान के संग से बाँधता है।''

''हे अर्जुन! रागरूप रजोगुण को कामना और आसक्ति से उत्पन्न जान। वह जीवात्मा को कर्मासक्ति से बाँधता है।''

''हे अर्जुन! सब देहाभिमानियों को मोहित करनेवाले तमोगुण को तो अज्ञान से उत्पन्न जान। वह जीवात्मा को प्रमाद, आलस्य और निद्रा के द्वारा बाँधता है।''

अब ये प्रत्येक गुण का स्वरूप क्या है? वह स्वरूप हमारे समक्ष रखा जा रहा है। सत्त्व क्या है? सत्त्व में निर्मलता और प्रकाश है। सत्त्व के भीतर विकार नहीं है। वह अनामय है। आमय विकारों को कहते हैं। संसार के हर पदार्थ में भी ये तीनों गुण भरे हुए हैं। यहाँ प्रकाश का अर्थ हुआ – जैसे हमारे भीतर में कभी ज्ञान की चिनगारी आती है। यह ज्ञान सत्त्वगुण का लक्षण है। एक जानकारी हमें मिली और प्रकाश का अनुभव हुआ। आप यह देखेंगे कि जब भी हमें कोई नया ज्ञान मिलता है, तो उसके साथ सुख की संवेदना बहुत सूक्ष्म रूप से जुड़ी रहती है। हम कभी इस बात पर ध्यान नहीं दे पाते, पर यदि इसका ठीक तरह से गहन चिन्तन करें, तो यह देखेंगे जब भी हमारे भीतर कोई ज्ञान आया, तो सुख की संवेदना उसके साथ-साथ चलती है। सत्त्वगुण जीवन में आने से हमारे मन में, अन्त:करण में एक शान्ति का बोध होता है। एक हल्कापन मालूम होता है। यह सत्त्वगुण का

धर्म या लक्षण है। यह सत्त्वगुण क्या करता है? – सुखसंगेन बध्नाति ज्ञानसंगेन चानघ – अर्थात् इससे सुख और ज्ञान का संग होता है। इनके द्वारा सत्त्वगुण बाँधता है। बाँधते तो तीनों ही गुण हैं। जैसा कि हमने श्रीरामकृष्ण के तीन गुणों के उस प्रसिद्ध उदाहरण में देखा था। तीन डाकुओं के समान वे बाँधते हैं। जो तमोगुण है, वह तो मार ही डालना चाहता है। रजोगुण बाँधकर छोड़ देता है। सत्त्वगुण बन्धन तो छुड़ा देता है, पर वह भी परमात्मा के पास नहीं ले जा पाता। सत्त्वगुण मानो एक सोने की शृंखला है। यह सोने की जंजीर किससे बाँधती है? सुख और ज्ञान के संग से बाँधती है। यह रज क्या है? रजोगुण को कामना और आसक्ति से उत्पन्न जानना चाहिए। यह तृष्णा से उपजता है। जब किसी के भीतर तृष्णा आती है, तो क्या होता है? तब कर्म करने की स्पृहा होती है। कामना भीतर पैदा हुई जिसके फलस्वरूप हमारे अंग-प्रत्यंग विक्षुब्ध होने लगते हैं। हम चंचल हो उठते हैं। इसी को कर्मसंग कहते हैं। कर्म की आसक्ति के द्वारा यह रजोगुण बाँधता है। तमोगुण का स्वभाव कैसा है? **तमस्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम्। प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत।।** – यह मोहित करता है। इसका क्या अर्थ है? तमोगुण जीवन में प्रबल होने पर मनुष्य बिल्कुल एक मोह की स्थिति में रहता है। इसको विभ्रम की स्थिति भी कह सकते हैं। जब हम अत्यन्त दु:खी हों, कुछ नहीं सूझता है। वह स्थिति है प्रमाद की, जहाँ बुद्धि अपना काम ठीक ढंग से नहीं कर पाती। कुछ काम करने की इच्छा ही नहीं होती। इस तमोगुण के प्राबल्य से काम सब अव्यवस्थित रूप से ही होते हैं। आलस्य की बहुतायत होती है। और कहा गया –

सत्त्वं सुखे संजयति रजः कर्मणि भारत।
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे सञ्जयत्युत।।९।।

– भारत (हे अर्जुन!) सत्त्वम् सुखे संजयति (सत्त्वगुण सुख में लगाता है) रज: कर्मणि (रजोगुण कर्म में) तम: तु ज्ञानम् आवृत्य (तमोगुण तो ज्ञान को ढँककर) प्रमादे उत संजयति (प्रमाद में भी लगाता है)।

"हे अर्जुन ! सत्त्वगुण सुख में लगाता है, रजोगुण कर्म में और तमोगुण तो ज्ञान को ढँककर प्रमाद में लगाता है।"

यहाँ पर कहा गया है कि सत्त्वगुण सुख में लगाता है। यह सत्त्वगुण की वृत्ति है। यह तो हमारे अनुभव का विषय है। भीतर में सुख की संवेदना ही ज्ञान का लक्षण है। जहाँ पर भी चंचलता पैदा होती है, वह रजोगुण का लक्षण है। जब हम मोह की स्थिति में होते हैं, विभ्रम की स्थिति में होते हैं, उसी को तमोगुण कहा गया है। तमोगुण प्रमाद में लगाता है। कैसे लगाता है? ज्ञान को आवृत करके तमोगुण हमसे प्रमाद करवाता है। हम सही काम क्यों नहीं करते? जब हमारा ज्ञान और विवेक तमोगुण द्वारा ढँक जाता है, तभी हमसे प्रमाद होता है और काम ठीक ढंग से नहीं कर पाते। तमोगुण हमारे जीवन में जब आता है, तो वह विवेक को ढँक लेता है। विवेक ढँक जाने से फिर हमारी बुद्धि काम ही नहीं कर पाती है। अर्जुन के जीवन में मोह आया, तब विवेक ढँक गया, जिसके फलस्वरूप युद्ध में खड़े सभी शत्रुगण उसे आत्मीय स्वजन दिखाई देने लगे। कर्तव्य और अकर्तव्य का विचार उसके अन्दर शिथिल पड़ जाता है। उसी प्रकार हमारे जीवन में भी जब तमोगुण का प्राबल्य होता है, तो यही स्थिति पैदा हो जाती है। हम कुछ सोचकर समझ नहीं पाते। उसके बाद कहते हैं कि जब एक गुण प्रबल होता है, तो दोनों को दबाकर प्रबल होता है। अपनी क्रिया वह किस प्रकार करता है? प्रभु कहते हैं –

रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारत।
रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा।।१०।।

– भारत (हे अर्जुन!) रज: च तम: अभिभूय: सत्त्वम् (रजोगुण और तमोगुण को दबाकर सत्त्वगुण) सत्त्वम् च तम: रज: (सत्त्वगुण और तमोगुण को दबाकर रजोगुण) तथा एव (वैसे ही) सत्त्वम् रज: तम: भवति (सत्त्वगुण और रजोगुण को दबाकर तमोगुण बढ़ता है)।

"हे अर्जुन! रजोगुण और तमोगुण को दबाकर सत्त्वगुण, सत्त्वगुण और तमोगुण को दबाकर रजोगुण, वैसे ही सत्त्वगुण और रजोगुण को दबाकर तमोगुण बढ़ता है।"

जब सत्त्वगुण प्रबल हुआ तो एक आनन्द हमारे भीतर बना रहता है। भौतिक कारण न भी दिखाई दे, परन्तु फिर भी हम अपने भीतर एक आनन्द का अनुभव करते हैं। मन बहुत हल्का-सा लगता है। इन्द्रियाँ शान्त हो जाती हैं। इन सबका तात्पर्य यह हुआ कि सत्त्वगुण हमारे भीतर बढ़ा है। जब जीवन में दु:ख की स्थिति रहती है, तब ऐसा लगता है कि हम किसी बड़े भार में दबे हुए हैं। यह रजोगुण के कारण होता है। तमोगुण आने पर ज्ञान और प्रकाश का प्रत्यक्ष अभाव हो जाता है और एक जड़ता का भाव चला आता है। अत: हम देखते हैं कि इन तीनों के आपस के सम्मिश्रण से मनुष्य में भी परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगता है। प्रभु पुन: कहते हैं – **(क्रमशः)**

साधुओं के पावन प्रसंग (८२)

स्वामी अशेषानन्द

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु मूल बंगला से इसका हिन्दी अनुवाद स्वामी पद्माक्षानन्द ने किया है, जिसे धारावाहिक रूप से प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

श्रीमाँ के विषय में स्वामी ऋतानन्द

शनिवार, २९ नवम्बर, १९२१

''गगन महाराज (स्वामी ऋतानन्द) श्रीमाँ के सम्बन्ध में कहते थे – 'श्रीमाँ कोलकाता से जयरामबाटी जाते समय मार्ग में कोआलपाड़ा आती थीं। मैं उस समय बहुत छोटा था। मैं कोआलपाड़ा विद्यालय में पढ़ता था तथा स्वामी केशवानन्द के पास जाता था। केशवानन्द महाराज के पास ही मैंने पहली बार श्रीमाँ को बैलगाड़ी में बैठे हुए दर्शन किया था। श्रीमाँ ने कहा, 'यह बालक कौन है? अच्छा लड़का है। वहाँ पर बहुत-से लोग थे, परन्तु वे बारम्बार मुझे ही देख रही थीं।' उसी समय से मैं कोतुलपुर से सामान खरीदकर जयरामवाटी में श्रीमाँ के लिए ले जाता था। वह क्या ही आनन्द का विषय था!

'एकबार मैं बहुत बीमार था। ऐसा लगा कि प्राण जाने का समय हो गया हो, हाथ-पैर ठण्डा हो गया था। श्रीमाँ उद्बोधन से प्राय: ही राधू से लिखवाकर पत्र भेजती थीं तथा कुशलप्रश्न जानती रहती थीं कि गगन कैसा है। शरीर स्वस्थ होने के बाद मैंने उन पत्रों को देखा। शरत् महाराज ने जयरामवाटी में विभिन्न सामानों के साथ मेरे लिए अनार तथा अन्यान्य फल भेजा था। ऐसा लगता है कि उन्हें श्रीमाँ से मेरी अस्वस्थता के विषय में ज्ञात हुआ होगा। मैं अतीव आनन्दित हुआ! यहाँ तक कि अपने माता-पिता भी इस प्रकार का प्रेम नहीं करते।

'जब श्रीमाँ जयरामवाटी आयीं, तब उन्होंने कहा, ''ओ गगन, तुम्हारा शरीर ऐसा हो गया है! तुम्हारे लिए न जाने कितनी चिन्तित थी!'' श्रीमाँ ने अपने पास बैठाकर मुझे प्रेम से खिलाया और इसके साथ ही अपने भोजन में से कुछ निकालकर मुझे दिया।

'श्रीमाँ के पास खाने का बहुत सारा सामान आता था, किन्तु वे अधिकांश अन्य किसी को दे देती थीं। वे स्वयं कपड़े के आँचल में मूड़ी में मिर्ची मिलाकर खाती थीं। जब तक भक्तों का भोजन नहीं हो जाता था, तब तक वे स्वयं भोजन नहीं करती थीं। यदि वे भक्तों के साथ पास के कमरे

में भोजन करने बैठ जातीं, तो भी उनका मन भक्तों के भोजन की ओर ही रहता था। उनलोगों को उनके पसन्द का भोजन मिला कि नहीं; वे कहतीं, उसके पत्तल में यह दो, उसके पत्तल में वह दो इत्यादि। रुपया-पैसा आता था, लेकिन श्रीमाँ का उसके प्रति कोई आकर्षण नहीं था। संचय करने की थोड़ी-सी भी बुद्धि उनमें नहीं थीं, किन्तु दूसरों को देते समय मुक्तहस्त रहती थीं। वे ५ रुपया के जगह ७ रुपया दे देती थीं।

'श्रीमाँ किसी का दुख-कष्ट सहन नहीं कर पाती थीं। सिन्धूबाला (वह गाँव की लड़की थी, जिसे पुलिस ने स्वतन्त्रता आन्दोलन से जुड़े होने के सन्देह के कारण गिरफ्तार किया था) के कष्ट को सुनकर श्रीमाँ बहुत रोयी

थीं। इसीलिए देश की दुख-दुर्दशा की बातें उनके सामने कम ही बोली जाती थी। जयरामवाटी से किसी भक्त के वापस जाने पर, जहाँ तक दिखाई पड़ता रहता, श्रीमाँ रास्ते की ओर निहारते रहती थीं। ''यहाँ तक कि गया-काशी जाना आसान है, किन्तु जयरामवाटी आना बहुत कठिन है, श्रीमाँ ऐसा कहती थीं।''

'एक बालक जयरामवाटी आया, किन्तु श्रीमाँ किसी भी प्रकार से उसे दीक्षा देने के लिए तैयार नहीं हो रही थीं। वह दो घण्टे तक रोते रहा, तब कहीं श्रीमाँ अगले दिन दीक्षा देने के लिए सहमत हुईं। श्रीमाँ की अस्वस्थता के समय एक दूसरा बालक दीक्षा के लिए व्याकुल होकर विष्णुपुर से जयरामवाटी आया। शरत् महाराज ने उसे बहुत समझाया, किन्तु वह किसी प्रकार नहीं समझा। अन्त में डॉ. कांजीलाल बहुत नाराज हो गये। एक वकील तथा उनकी धर्मपत्नी दीनाजपुर से आये। वे लोग बरसात में भींगते हुए तथा घुटने भर पानी में चलते हुए जयरामवाटी पहुँचे। क्रिसमस के बाद ऐसा लगता कि जयरामवाटी में दुर्गोत्सव हो – झुण्ड के झुण्ड भक्तों की टोली श्रीमाँ का दर्शन तथा आशीर्वाद पाने के लिए आ रही है। जब वे उद्बोधन में रहतीं, तब वहाँ भी ऐसा ही होता था।

'जयरामवाटी के जमीन का मूल्य बहुत बढ़ गया। पहले बहुत कम लोग वहाँ पर निवास करते थे और टैक्स भी बहुत कम वसूल होता था। दूसरे गाँवों से व्यक्तियों को बुलाकर खेती होती थी। श्रीमाँ की इच्छा से ही कोआलपाड़ा में जगदम्बा आश्रम तैयार हुआ। आषाढ़ महीने में भारी बरसात के समय मकान का छप्पर बनाया गया। एक मिट्टी की दीवार गिर गई और एक मजदूर उसके नीचे दब गया। रासबिहारी दा और हेमेन्द्र दा ने श्रीमाँ के लिए एक नया मकान बनवाया। नया पलंग, नया बिछौना इत्यादि सामान खरीदा गया। श्रीमाँ प्रसन्न मामा की पत्नी के दुर्व्यवहार से परेशान होकर नये मकान में गयीं। जितना रुपया श्रीमाँ को मिलता था, वह उदारहस्त से मामा लोगों को दे देती थीं। उससे ही मामा लोगों का दो तल्ला घर हुआ। श्रीमाँ की आवाज क्या ही मधुर थी! क्या वे शब्द अब ध्यान में सुनायी पड़ सकते हैं? हालाँकि श्रीमाँ के शरीर-त्याग के दो दिन के बाद महापुरुष महाराज ने कहा था, श्रीमाँ अब सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त हो गयी हैं और सबकी सेवा ग्रहण कर रही हैं।

'एक दिन श्रीमाँ के पास मैं बैठा हुआ था और मूड़ी खा रहा था। एक भिखारी ने आकर भिक्षा की याचना की, किन्तु उस समय श्रीमाँ किसी भाव में डूबी हुई थीं। उसी भाव में उन्होंने कहा, ''क्या मेरे केवल दो हाथ हैं? मैं कितने हाथों से कार्य कर रही हूँ?'' परन्तु तत्क्षण स्वयं को सम्हालते हुए कहने लगीं, ''क्या ही निरर्थक बातें बोल रही हूँ? मेरे तो केवल दो ही हाथ हैं।''

'श्रीमाँ जब कोआलपाड़ा से उद्बोधन जातीं, तब बालक भक्त रोने लगते, तब श्रीमाँ कहतीं, 'तुमलोग मत रोओ, मैं पुनः आ रही हूँ।' किन्तु अन्तिम समय जाते समय उन्होंने यह वाक्य नहीं कहा।

'कोआलपाड़ा आश्रम में केशवानन्दजी के साथ राजेन दादा इत्यादि का मनमुटाव चल रहा था। श्रीमाँ को किसी तरह से यह सूचना मिल गयीं। उन्होंने नलिनी से कहा, ''उनलोगों के मध्य कुछ मतभेद चल रहा है।''

'मनसा देवी के पूजन का दिन था। श्रीमाँ जयरामवाटी में हैं। श्रीमाँ की चरण-पूजा करूँगा, ऐसा सोचकर मैं बहुत कमल पुष्प ले आया। उस दिन बहुत वर्षा हो रही थी। मैंने श्रीमाँ के चरणों में पुष्पांजलि दी। तत्पश्चात् भक्तों ने भी पुष्पांजलि दी। श्रीमाँ ने कहा, ''तो आज फिर क्या हुआ? क्या आज मनसा-पूजा हुई!' किन्तु यह बात कौन समझे?

'एक दिन नलिनी दीदी ने श्रीमाँ को बहुत ही कष्ट दिया। रात्रि बहुत हो गयी थी। गोपेश दादा (स्वामी सारदेशानन्द) तथा अन्य नलिनी के व्यवहार से बहुत क्षुब्ध हैं। किन्तु रात्रि में श्रीमाँ मधुर स्वर से 'नलिनी' 'नलिनी' कहकर बुलाने लगीं। वे कहने लगीं, 'वह एक छोटी बच्ची ही तो है; वह नहीं जानती कि वह क्या कर रही है।''

'एक दिन श्रीमाँ के एक दीक्षित भक्त ने यह देखने की प्रतिज्ञा की कि श्रीरामकृष्ण तथा श्रीमाँ सारदा को मैं जो नैवेद्य निवेदित करता हूँ, वास्तव में वे उसको ग्रहण करते हैं कि नहीं? यदि ग्रहण नहीं करेंगे, तो आत्महत्या कर लूँगा। उस दिन रविवार था, छुट्टी का दिन था। दोपहर का दो बज चुका था, फिर भी भोग-ग्रहण का कोई चिन्ह दिखाई नहीं दे रहा था। बाद में देखा, ठाकुर और श्रीमाँ के नेत्रों से (चित्र में से) ज्योति निकलकर समस्त अन्न-व्यंजन को स्पर्श की।' '' **(क्रमशः)**

रामकृष्ण मठ, पुणे, महाराष्ट्र में 'विवेकानन्द ह्यूमैन एक्सीलेन्स बिल्डींग'का उद्घाटन हुआ

रामकृष्ण मठ, पुणे, महाराष्ट्र में 'विवेकानन्द ह्यूमैन एक्सीलेन्स बिल्डींग' का उद्घाटन समारोह आयोजित किया गया। इस अवसर पर ८ से १० अगस्त, २०२५ तक त्रिदिवसीय कार्यक्रम आयोजित हुए। ८ अगस्त को प्रात: मंगल आरती के बाद सारदा सत्संग समिति, सम्भाजीनगर ने भजन किया। ९ बजे के संगीत सत्र में विवेकानन्द विश्वविद्यालय, बेलूड़ मठ के स्वामी जपसिद्धानन्द और वहाँ के छात्रों द्वारा वेद-पाठ किया गया। रामकृष्ण मठ, पुणे के अध्यक्ष स्वामी श्रीकान्तानन्द जी महाराज ने समागत अतिथियों का स्वागत किया। उसके बाद १२.३० तक स्वामी तद्‌युक्तानन्द, डॉ. दत्तात्रेय बेलांकर, स्वामी कृपाकरानन्द, स्वामी कृपाघनानन्द जी के और ३.१५ से ३.४५ तक अम्बरीश महाराज डेगुलकर के भजन हुये। ४ बजे के सत्र में दीप-प्रज्वलन, वेद-पाठ और स्वामी श्रीकान्तानन्द जी के स्वागत-भाषण के बाद स्वामी निखिलेश्वरानन्द, स्वामी ज्ञानगम्यानन्द, स्वामी सुमनसानन्द, स्वामी अनुपमानन्द, स्वामी नित्यज्ञानन्द के व्याख्यान हुये। ६.३० से ७ बजे तक सन्ध्या आरती हुई। ७.१५ से ८.४५ तक रुद्र राय, कोलकाता ने भक्ति-संगीत प्रस्तुत किया।

९ अगस्त, २०२५ को ५.३० से ६.३० बजे तक रामकृष्ण सत्संग मंडल, गोंदिया ने भजन गाये। ६.३० से ७.३० बजे तक कृपाघनानन्द और ८.१५ से ८.५५ तक स्वामी कृपाकरानन्द जी के भजन हुये। ९ बजे विवेकानन्द इंस्टिट्यूट ऑफ ह्यूमैन एक्सीलेन्स भवन का लोकार्पण रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के परमाध्यक्ष परम पूज्यपाद श्रीमत् स्वामी गौतमानन्द जी महाराज के कर-कमलों द्वारा किया गया। उसके बाद नवनिर्मित सुसज्जित सभागार में ९ बजे सभा हुई। अतिथियों द्वारा दीप-प्रज्ज्वलन और जपसिद्धानन्द के वेद-पाठ के बाद स्वामी श्रीकान्तानन्द जी महाराज ने सभी मंचस्थ वक्ताओं और स्रोता सन्तों और भक्तों का स्वागत किया। तत्पश्चात् स्वामी शुद्धिदानन्द, स्वामी ज्ञानव्रतानन्द, स्वामी मुक्तिदानन्द, स्वामी विष्णुपादानन्द जी के व्याख्यान हुये। तदनन्तर संघाध्यक्ष परम पूज्यपाद स्वामी गौतमानन्द जी महाराज ने आशीर्वचन प्रदान किये।

भोजनोपरान्त १.३० से ३.३० बजे तक हिन्दी नाटक 'युगनायक विवेकानन्द' प्रदर्शित किया गया।

४ बजे के सत्र में वेद-पाठ और स्वामी श्रीकान्तानन्द जी के स्वागतोपरान्त स्वामी प्रपत्त्यानन्द, स्वामी जपसिद्धानन्द, स्वामी योगात्मानन्द और स्वामी विश्वात्मानन्द जी ने दिव्यता के प्रबोधक स्वामी विवेकानन्द पर व्याख्यान दिये। सन्ध्या आरती के बाद ८.१५ से ८.३० बजे तक पण्डित रघुनादन पनशीकर, पुणे ने भजन प्रस्तुत किये।

१० अगस्त, २०२५ को युवा-सम्मेलन था। ८.३० से ८.४५ तक 'युगनायक विवेकानन्द' हिन्दी नाटक दिखाया गया। उसके बाद दीप-प्रज्वलन, वेद-पाठ और स्वामी श्रीकान्तानन्द जी के द्वारा युवाओं और अतिथियों के स्वागतोपरान्त श्री मूरलीधर मोहल, मन्त्री, भारत सरकार, स्वामी विष्णुपदानन्द जी ने व्याख्यान दिये। द्वितीय सत्र १०.३० बजे से स्वामी बुधानन्द जी, स्वामी बोधमयानन्द जी, श्री अविनाश धर्माधिकारी और स्वामी आत्मश्रद्धानन्द जी ने युवाओं को सम्बोधित किया। भोजन, विश्राम और सन्ध्या-आरती के बाद ७ से ८ बजे तक स्वामी तद्‌युक्तानन्द जी के भजन हुये। आज ही सन्तों को पंढरपुर में विट्ठल-रुक्मिणि माता का दर्शन, रामकृष्ण आश्रम, पण्ढरपुर और चिमनगाँव में स्कूल का भ्रमण कराया गया। इस प्रकार यह त्रिदिवसीय समारोह सोल्लास सुसम्पन्न हुआ।